

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन

(महामना मालवीय स्मारक व्याख्यानमाला ग्रन्थ)

सपादक मण्डल

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी
आचार्य श्री केशवचन्द्र मिश्र
श्री रामायण उपाध्याय
श्री रामनक्षत्र त्रिपाठी



मुख्य वितरक -

भारतीय प्रकाशन मन्दिर

काशी सदन, पान दरौवा

लखनऊ

अखिल भारतीय महामना मालवीय स्मारक-समिति
भाटपारसानी, दनरिया (उ० प्र०)

चतुर्थ पुष्प

समाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण १९९०
मूल्य १० रुपये

- प्रकाशक -

मदनमोहन मालवीय शिक्षा संस्थान,
भाटपारसानी, दनरिया (उ० प्र०)

- मुद्रक -

नया सतार प्रेस,
भरौनी, धाराणसी-१

आशीर्वाचन

महामना मदनमोहन मालवीय जी भारत के ही नहीं विश्व के महा-पुरुषों में अपना सर्वोच्च महत्त्व रखते हैं। उनका व्यक्तित्व वैविध्यों से भरा था, किन्तु वहाँ विरोध की छाया भी नहीं थी। वे सबके थे और सब उनके थे। इसीलिये सब उनका समादर है और वे सर्वमान्य हैं।

ऐसे महामना की १००वीं जयन्ती मनाने का गुरुतर भार उन्हीं की कृपा से सँभला है और इस जयन्ती से यदि कुछ भी लोकोपकार संभव हुआ है, तो हम लोगों की ढ़डी भारी मफलता है।

महामना की इसी शती जयन्ती के अन्तर्गत चलने वाली व्याख्यान-माला का ग्रन्थ रूप में प्रकाशन हमारे लिये बड़ी प्रसन्नता की बात है। इससे भारतीय चेतना तो उद्बुद्ध होगी ही, भारतीय जीवन के विविध अंगों पर भारतीय मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा प्रकटीकृत विचारों से विश्व की जनता भी यहाँ के जीवन-स्वरूप से अवगत होगी। यह एक महान् काय सम्पादित हो रहा है। परमेश्वर सफलता प्रदान करे।

सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी

आइ० ए० एस०

उपकुलपति

वाराणसेय सश्रुत विश्वविद्यालय, वाराणसी

अध्यक्ष

अग्निल भारतीय महामना मालवीय

स्मारक-समिति

काशी,

२० जनवरी १९६५ ई०

दो शब्द

अखिल भारतीय महामना मालवीय स्मारक-समिति की ओर से मदनमोहन मालवीय मन्त्रालय के तत्त्वावधान में सम्पन्न होनेवाली शती चयन्ती और उसके अनेक महिमामण्डित त्रैवार्षिक कार्यक्रम, ज्ञानयज्ञात्मक पुनीत 'मालवीय व्याख्यान माला' का आयोजन और तमसा प्रथम रूप में प्रकाशन, यह सब परमेश्वर की असीम अनुकम्पा का सुफल तो है ही, बरह्य विद्वानों की सहज कृपा के भी सुपरिणाम हैं।

देश के समाजस्थायी विचारका, सुधीनता का मूर्धापिया की कृपा न होती तो कुछ भी हाथ मभर नहीं या और न यह व्याख्यान माला ही गौरवपूर्ण रूप में संचालित हो पाता।

यदि यह प्रथम, महामना के गौरव और उनके युग प्रेरक लक्ष्य-मूर्ति को स्थापित करने में लाभमगल और लाभ निर्माण के लिये प्रवर्तित माग को लोकप्रिय बनाने में, साधक बनना तो समिति का ओर से महामना का यही सही अर्चना और भद्रान्वि होगी।

मै महामना उनके प्रमिया और विद्वानों का समझ इस कार्य का पूर्ति पर आतत शिर पुन-पुन मयका भद्रान्वि अर्पित करने हुए अपूर आहात का अनुभव कर रहा है। माथ ही चयन्ती यज्ञ में एक तुच्छ परिचारक होने के नाते मैं अपनी जुटिया का तिये क्षमा चाहता हूँ।

मदनमोहन मालवीय डिप्टी कलेक्टर
मन्त्रालय (दिल्ली)
२१ जनवरी १९६३ *०

केशवचन्द्र मिश्र
मना
अखिल भारतीय महामना मालवीय
स्मारक-समिति

परीठिका

अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयन्ती और व्याख्यान-माला ग्रन्थ

यह भारतवर्ष, अपनी जिन अनेक महिमामयी विशेषताओं से भूमण्डल का बन्ध और शृंगार है, उनमें यहाँ सबसे अधिक ज्योतिभास्वर महापुरुषों के आशिर्वात और उनके समादर एवं समम्यर्चन की सुष्ठु परम्परा है। इंद्र, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि की परम्परा और उनके समम्यर्चन की धारा सर्वविदित है। इधर रामकृष्ण, विवेकानन्द, गांधी, महामना मालवीय जी और जवाहरलाल नेहरू जैसी विभूतियाँ ने पूजागत परम्परा की अजस्रता को अक्षुण्ण रखा। इनमें भी महामना मालवीय जी का स्थान फारक पुरुष के रूप में अत्यन्त बड़ा जायगा।

अद्वेषा सर्वं भूतानां मैत्रं कर्मण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समः दुःख-सुख-क्षमी ॥

मुझे तो उपर्युक्त श्लोक के स्मरण पर महामना की स्मृति और महामना की स्मृति आने पर उपयुक्त श्लोक का स्मरण हो आता है। महामना को प्राणिमात्र से कियदपि द्वेष नहीं था, वे सबके निस्वार्थ, हेतुशून्य मित्र थे। वे कष्टों के अवतार थे। उनमें आसक्ति और अहंकार का लेश भी नहीं था। वे अपराधी का भी अभय बनाने वाले अद्भुत क्षमाशील और दुःख-सुख के द्वन्द्वों से ऊपर उठे महापुरुष थे। वे नर शिशु, किम्बहुना, सत्वमय हृदय ही हृदय थे। महामना के लिए 'हृदयम्' शब्द का उच्चारण करके मुझे उड़ी प्रसन्नता होती है। विद्वानों की व्याख्या के अनुसार 'हृदयम्' शब्द भारतीय सभ्यता का मूलधार प्रतीत होता है और सच्चिबुद्ध, महामना के रूप में भारतीय सभ्यता ही मूर्तिमान् हुई थी। जैसे आकर्षक 'प्रोटन' और विकर्षक 'इलेक्ट्रॉन' से सम्पन्न परमाणु भौतिक जगत् का मूलधार है, वैसे ही भारतीय सभ्यता का आधार भी 'हृदयम्' है। 'हृ' का अर्थ होता है आदान, 'द' का अर्थ होता है विस्मय या प्रदान, और 'यम्' का अर्थ है, आदान प्रदान का नियमन अथवा सन्तुलन। सम्रह और त्याग का उचित विवेक और दोनों का उचित उपयोग ही नियमन है। महामना 'यम' या नियमन की यह पावन विवेक भूमि थे, जहाँ भूत, वत्तमान, भविष्य, सम्रह और त्याग, सम्भरण और प्रसरण, प्राज्ञान और अज्ञानन, अगति और गति का अपूर्व सन्तुलन एवं सगमन होता था, जहाँ प्राज्ञ और प्रतीक्ष्य तथा प्राचीन एवं अनाचीन दोनों को विश्राम प्राप्त होता था। महामना वह 'व्यान' तत्व थे जहाँ 'प्राण' और अपान का सगम होता है। भारतीय राष्ट्र का और उसके माध्यम से अखिल विश्व का भी इस शक्तिप्रम व्यक्तित्व और कृतित्व से युक्त महामानव ने वायाभ्यन्तर उद्बुद्ध किया नव जीवन दिया और दिया नव चेतना सम्बलित क्यातिर्मयं लक्ष्य भी। महामना में विश्व के सभी आदर्श व्यवहार रूप में प्रत्यर्थाभूत हो रहे थे!

शर्ती जयन्ती

हमारा परम्परा है कि हम अपने सत्यम् विभूतियाँ से सम्पन्न महापुरुषों की श्रचना अनेक विधियाँ एव स्मृतियाँ से सम्पन्न करते हैं, किंतु इसमें 'वार पूजा' की अधि भावना की सम्मानना का सर्वथा निरास हा मानना चाहिए। श्रचना के माध्यम से स्वयं भारतीय हृदय महद् गुणों के प्रति स्वयं समादर की ही अभिव्यञ्जना करता है। श्रचना की विधियाँ में जयन्ती पद्धति से भी सामूहिक अभिनन्दन भ्यर्चन करने का पारम्परिक प्रथा है।

महामाता का शताब्दी आते हा देखा के नितनशील विद्वाना का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। विद्वानों ने विचार किया कि महामाता की जयन्ती भा उनके अनुरूप ही चरितार्थ हानी चाहिए। जिन प्रकार सम्पूर्ण मानव जगत् का महामाता का शताब्दीकरजित एव उद्बुद्ध किया है, वैसा ही उसी वर्ष ही भी उसका शताब्दीकारजित आर प्रोद्बुद्ध करे। इस तरह के विचारकों में सुप्रसिद्ध विद्वान् और विचारक आचार्य केशवचन्द्र मिश्र, प्रधानाचार्य मदनमोहन मालवीय हिंदी कालेज, नाटपारस (दवरिया) के विचारकाच सजाविक श्रेय दिया जायगा। आप महामाता-शालिक विरविद्यालय के स्नातक हैं जिनके चरित्व पर महामाता के व्यक्तित्व की भासात्मक और नियात्मक—अभिष्टि छाप पड़ी है। महामाता स्नातकों से बराबर कहते थे कि आप विभाय भाय म गाँव-गाँव में जाकर देश की जनता जनार्दन की श्रचना काजिये। उनका सर्वश्रेष्ठ निमाण काजिय। इस बात का भुलाय न जा सकता कि ओके विश्वविद्यालया द्वारा प्रदत्त प्राध्यापक पद के निमन्तरा का अस्वाकार करक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्नातकाचर परीक्षा में उत्तीर्ण हाक बाद, आर म १८ १९ वर्ष पुढ निपट देहाली क्षेत्र म, महामाता का स्मृति में, रात्र ४ टट्टन जा का बलिष्ठ प्रेरणा म भारतवर्ष भर में एकमात्र और सत्यप्रथम सस्था महामाता महामाहा मालवाय महाविद्यालय का स्थापना इस सस्थान के बरेय्य प्रवचक मण्डल के सदस्य म स्थाप का। आपक आर्य व्यक्तित्व और गुण्ठम तपस्या के बलपर, अनेकसुगी विन्ना आर कर्मिन्नाओं के बाद म, निरन्तर उत्कण्ठे मुग आर नानगे मपशालिनी प्रतिभाओं के उत्साहक, पायक एव प्रदत्त रूप में महाविद्यालय 'प्रातिष्ठित' के रूप म अचिरल जगमगा रहा है। निर आपन आर आपन अमत्र प्रविद्ध दशमक भा बदानारायण मिश्र न था मुरति 'प्रातिष्ठित' विपटा, बतमान उपदुलतवि, वाराणसीय ससृष्ट निरविद्यालय, गाराणसी, भा हातुमा प्रयादवा पहार, सगादक 'कल्याण' भा दमनन्दनवा शुक्ल (दवरिया), श्री प० कानुबहा द्विव १, साहित्याय, सस्थाक सारभम ससृष्ट प्रार कायालय, गाराणसी प्रभृति विद्वाने, विन्ना आर दशमका से सम्पन्न स्थापित करक आर उनके उदार तथा सक्रिय सहयोग म 'कर्मिन्ना मरवाय महामाता मालवाय बनारस-समिति' का सपटन किया। त्रिकका प्रसार भावकता माहवि 'प्रातिष्ठित' पणिगत्र सचिदन्त महाराज (दिरहदा बाबा) ने आर अत्युत्ता मानव भा प० मुरविद्यालय मरिच विन्ना ने स्वाकार का।

समिति का चान्ना का वैचारिक रूप में मनाने का निरन्धय किया। महामाता की शताब्दी चान्ना मनाने के लिए कई ने भूल नहीं जाता है, ए इस तरह का समिति प्रथम-प्रथम बनी। समिति ने चान्ना का चरमो में अचिरल मानव ससृष्टिक मानवनों, यशों, शानयशों, प्रानान पराण ४. दुनकाय को से बाव दविष करके, तथा महामाता का पुण्यस्मृति का स्थापित प्रदान

करने के लिए महामना की प्रतिमा का स्थापन, डिग्री कॉलेजों का संचालन, वैदिक शोधसंस्थान का उद्घाटन, प्राच्य व्यायामशाला, खेल-कूद तथा प्राचीन रंगशाला आदि की स्थापना प्रभृति महत्कार्यों के सम्पादन को लक्ष्य बनाया। इन सभी कार्यक्रमों के सम्पादन एवं संचालन का केंद्र मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय ही स्वीकार किया गया।

समिति ने महामना शती जयंती के प्रथम अखिल भारतीय शुभारम्भ समारोह को सांस्कृतिक पर्व के रूप में चरितार्थ करने का निश्चय किया। इसमें सस्कृत-संस्कृति सम्मेलन, वेद के मर्मज्ञ विद्वान् श्री दामोदर सातवलेकर जी को 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि से विभूषित कर विद्वत्सम्मान, विशाल वैदिक वाङ्मय की विराट प्रदर्शनी, महाविष्णु यज्ञ और शास्त्रीय संगीत आदि के कार्यक्रमों की चरितार्थता स्वीकृत हुई। फिर २३-२४ अक्टूबर को लार्डों के जनसम्मर्द और देश विदेश के मूर्धन्य चित्तों, विद्वानों, आचार्यों, सत्ता, लोकनायकों के समागम में पीयूष वाहिनी सरयू के पावन तट पर, योगिराज श्री देवदहवा दास के पवित्र आश्रम के आसन्नवर्ती महर्षि वेदव्यास नगर में प्रथम समारोह का ऐतिहासिक कार्यक्रम सम्पादित हुआ।

२२-२३ अप्रैल १९६२ ई० को मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपारराना के विशाल मैदान में निमित्त विशाल पण्डाल में अखिल भारतीय शती जयंती का द्वितीय अखिल भारतीय समारोह सम्पन्न हुआ। इसमें साहित्य, शिक्षा, धर्म, दर्शन-संस्कृति, गोरक्षा आदि नामों से अनेक परिषदें गठित हुई थीं, जिनमें देश विदेश के अनेक गण्यमान्य विद्वानों एवं लोकनायकों की गोष्ठियाँ हुई थीं। इस अवसर पर कालेज के रम्य पार्क में, महामना की विशाल और भव्य मानवाकार सगममंरीय प्रतिमा का अनावरण, तत्कालीन उत्तर प्रदेशीय मुख्यमंत्री माननीय श्री चन्द्रभानु जी गुप्त के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार सम्पादक 'कल्याण' ने समारोह का अभ्युत्थान की तथा मदनमोहन मालवीय शिक्षण संस्थान के अग्नीभूत, महामना संस्कृत महाविद्यालय का शिलायास किया।

स्मारक समिति के तत्त्वावधान में ही गत वर्ष यहाँ स्नातक स्तरीय अध्ययन अध्यापन के लिए गारखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कला एवं विज्ञान सनिकाय में डिग्री कालेज का समारम्भ एवं संचालन आरम्भ हुआ।

३० जनवरी १९६५ ई० को शती जयंती के त्रैवैदिक कार्यक्रमों का समापन समारोह सम्पन्न होगा। इस अखिल भारतीय समारोह में भी देश के मूर्धन्य विद्वानों और लोकनायकों का समागम हो रहा है। इस समारोह में उत्तर प्रदेश का राज्यपाल महामहिम श्री विश्वनाथदास जी भी पथार रौं हैं। इस अवसर पर वैदिक शोधशाला का उद्घाटन भी होगा। इस वैदिक शोधशाला का लक्ष्य है कि इसके द्वारा देश विदेश के अल्पेण्य एवं गवेषक वैदिक वाङ्मय एवं परम्परा के विशाल साहित्य का अध्ययन अनुसंधान के द्वारा अपनी गवेषणा, और अध्येणा से वैदिक मर्मों एवं तत्त्वा का प्रकाशन करके विश्व को लाभान्वित बनायें।

ज्ञान-यज्ञ

इस महामना मालवीय शता जयन्ता के ऐतिहासिक कार्यक्रमों में अध्येण्य माला रूपी 'ज्ञानयज्ञ' का भी आयोजन किया गया था। यह रहा है "गाह्यदकारी और गारखपुर अनुसंधान

जनी जयन्ती

हमारी परम्परा है कि हम अपने स्वामी विभूतिवा से सम्बन्ध महापुरुष का प्रथम अनेक विधिवा एवं स्मृतिवा से सम्बन्ध करत है, विन्तु हमम 'गारपूजा' की अथ भावना की सम्भावना का सर्वथा निरास हा मानता चाहिए। प्रथम क माध्यम से स्वयं भारतीय हृदय महद् गुरुओं के प्रति स्वयं सम्बन्ध की ही अभिव्यक्ति करता है। ज्ञाना का विधिवा में जयन्ती पद्धति से भी सामूहिक अभिवादन किया जाने का पारम्परिक प्रथा है।

महामना का शताब्दी प्रात हा देश क नितासाल विद्वानों का ज्ञान इतर अज्ञान हुआ। विद्वानों ने विचार किया कि महामना का जयन्त हा उनके अनुभव हा परिवर्तन हानी चाहिए। जिन प्रकार सम्पूर्ण मानव जीवन का महामना : भाग्यकरिणी एवं उद्बुद्ध किया है, वैस हा जयन्ती भी उसका आलापनावित आर प्रारुद्ध कर। इस तरह क विचारकों में सुप्रसिद्ध विद्वान् और विचारक आचार्य जयन्त सिंह, प्रयागवासी मदनमादन कामवाय हिमी कालेज, नाट्याररानी (देवरिया) क निष्काम सवाधिक शेष किया जायगा। आप महामना-कालिक विश्वविद्यालय क स्थापक है जिनके व्यक्तित्व पर महामना के अखिल की भावनामक और नियात्मक—अभिष्ट स्थाप पड़ी है। महामना स्थापका से बराबर कहा ग कि आप नि स्वयं भारत में गौरवों में जाकर देश का जाता जातदन की ज्ञाना काजिप। उनका सर्वथैव निभाण काजिय। इस बात का भुलाया नः जा सकता कि एक विररीगालया द्वारा प्रदत्त प्राध्यापक पद क निमन्त्रणा का अस्वीकार करक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापक वर परादा में उच्चोच होने के बाद, आज से १८ १९ वष पूर्व निपट देहली जय में, महामना का स्मृति में, राजकीय टर्नहन जा की बलिष्ठ प्रेरणा से भारतवर्ष में एकमात्र और सयप्रथम स्वयं महामना मदनमादन मालवाय महाविद्यालय का स्थापना इस संस्था क वरिष्ठ प्रबन्धक मन्त्राल के सहयाग से आपने की। आपने आशु व्यक्तित्व और गुणतम तपस्या क बलपर, अनेकमुष्ठा विघ्ना आर कठिनाईयों क नाद भी, विचार उत्तमों मुग आर ज्ञानो मयशानिनी प्रतिभाओं के उत्पादक, पापक एवं प्रदक रूप में महाविद्यालय ज्वातिभिष्ट क रूप में अविरल जगमगा रहा है। फिर आपने और आपक अग्र प्रसिद्ध देशभक्त आ ब्रह्मचारावर मिश्र ने था गुरति नारायणमणि त्रिपाठी, वर्तमान उपपुलपति, जाराणयेण सञ्चत विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री हनुमान प्रसादजी पोहार, सम्पादक 'कल्याण' भी देवादनकी शुक्ल (देवरिया), श्री प० बामुदेवजी द्विवेदा, साहित्याचार्य, सस्थापक सार्वभौम सञ्चत प्रचार कालय, वागारसी प्रभृति विद्वानों, चिन्तका आर देशभक्ता से सम्पर्क स्थापित करक आर उनक उदार तथा समिप सहयाग से 'अखिल भारताय महामना मालवीय स्मारक-समिति' का सघटन किया। जिसका प्रथा सञ्चकता माहोबिल प्रयन्ताचार्य यागिराज सच्चिदानन्द महाराज (देवरहवा बाबा) ने और अच्युता माननाय श्री प० गुरतिनागयण मणिजो त्रिपाठी ने स्वीकार की।

समिति ने जयन्ती को धैवापिक रूप में मनाने का निश्चय किया। महामना की शताब्दी जयन्ती मनाने के लिये यदि मैं भूल नहीं करता हूँ, तो इस तरह की समिति प्रथम प्रथम बा। समिति ने अपने फायक्रमो में अखिल भारतीय सांस्कृतिक सम्मेलना, यज्ञा, ज्ञानयज्ञा, प्राचार परम्परा को पुनर्जायत करने वाले पवित्र कृत्या, तथा महामना की पुण्यस्मृति का स्थायित्व प्रदा

करने के लिए महामना की प्रतिमा का स्थापन, डिग्री फालेजों का संचालन, वैदिक शोधसंस्थान का उद्घाटन, प्राच्य व्यायामशाला, खेल-कूद तथा प्राचीन रंगशाला आदि की स्थापना प्रभृति महत्कार्यों के सम्पादन को लक्ष्य बनाया। इन सभी कार्यक्रमों के सम्पादन एव संचालन का केन्द्र मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय ही स्वीकार किया गया।

समिति ने महामना शती जयन्ती के प्रथम अगिल भारतीय शुभारम्भ समारोह को सांस्कृतिक पर्व के रूप में चरितार्थ करने का निश्चय किया। इसमें सस्कृत-संस्कृति सम्मेलन, वेद के मर्मज्ञ विद्वान् श्री दामोदर सातल्लेकर जी को 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि से विभूषित कर विद्वत्सम्मान, विशाल वैदिक वाङ्मय की विराट प्रदर्शनी, महाविष्णु यज्ञ और शास्त्रीय संगीत आदि के कार्यक्रमों की चरितार्थता स्वीकृत हुई। फिर २३ २४ अक्टूबर को लाजों के जनसम्मर्द और देश विदेश के मूर्धन्य चिंतकों, विद्वानों, आचार्यों, सर्तों, लोकनायकों के समागम में पीयूष वाहिनी सरयू के पावन तट पर, योगिराज श्री देवरहवा नाभा के पवित्र आश्रम के आसनवर्ती महर्षि वेदव्यास नगर में प्रथम समारोह का ऐतिहासिक कार्यक्रम सम्पादित हुआ।

२२-२३ अप्रैल १९६२ ई० को मदनमोहन मालवीय महाविद्यालय, भाटपाररानी के विशाल मैदान में निमित्त विशाल पण्डाल में अगिल भारतीय शती जयन्ती का द्वितीय अगिल भारतीय समारोह सम्पन्न हुआ। इसमें साहित्य, शिक्षा, धर्म, दर्शन-संस्कृति, गोरक्षा आदि नामा से अनेक परिषदें गठित हुई थीं, जिनमें देश विदेश के अनेक गण्यमान्य विद्वाना एव लोकनायकों की गोष्ठियाँ हुई थीं। इस अवसर पर फालेज के रम्य पार्क में, महामना की विशाल और मध्य मानवाकार सगमर्मायी प्रतिमा का अनावरण, तत्कालीन उत्तर प्रदेशीय मुख्यमंत्री माननीय श्री चंद्रभानु जी गुप्त के कर कमला द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री हनुमान प्रसाद जी पाठार सम्पादक 'कल्याण' ने समारोह की श्रेष्ठता को तथा मदनमोहन मालवीय शिक्षण-संस्थान के अगीभूत, महामना संस्कृत महाविद्यालय का शिलायास किया।

स्मारक-समिति के तत्त्वावधान में ही गत वर्ष यहाँ स्नातक स्तरीय अध्ययन अध्यापन के लिए गोरक्षपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कला एव विज्ञान सनिकाय में डिग्री फालेज का समारम्भ एव संचालन आरम्भ हुआ।

३० जनवरी १९ ५ ई० का शती जयन्ती के त्रैविपिन कार्यक्रमों का समापन समारोह सम्पन्न होगा। इस अगिल भारतीय समागम में भी दश क मूर्धन्य विद्वाना और लोकनायकों का समागम हो रहा है। इस समारोह में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विश्वनाथदास जी भी प्यार रहे हैं। इस अवसर पर वैदिक शोधशाला का उद्घाटन भी होगा। इस वैदिक शोधशाला का लक्ष्य है कि इसके द्वारा देश विदेश क अन्वेषक एव गवेषक वैदिक वाङ्मय एव परम्परा के विशाल साहित्य क अध्ययन अनुशीतान के द्वारा अपनी गवेषणा, और अन्वेषणा से वैदिक मर्मों एव तत्वा का प्रकाशन करके निरर को लाभान्वित बनायें।

ज्ञान-यज्ञ

इस महामना मालवीय शती जयन्ती के ऐतिहासिक कार्यक्रमों में ध्यात्वायन माला रूपी 'ज्ञानयज्ञ' का भी अनुष्ठान किया गया था। यह उदाहा आहादकारी और गौरवमय अनुष्ठान

रहा है। मानव, चेतना निश्चित प्राणी है और उसका सभी प्रयत्नों में चेतना की भूमिका प्रमुख रही है। उसके विकास और इतिहास के मूल में 'चेतना' का अनिवार्य उपाकार है। जाना ही मानवता है उसकी। मानव की उसी चेतना के परिष्कार-निराकार, अभिव्यक्ति, प्रसन्नोपन एवं परिनागरण को उद्देश्य में रखकर देश के विद्वानों और विचारकों का इस तरह का योगदान की श्रमार्थना का यह भी, शिथिल उद्देश्यो सहज ही स्वीकृति देकर हम कृतार्थ किया। यह व्याख्यान माला जिन विद्वानों के अमूल्य एवं अक्षयप्रभ व्याख्यान मंगिया में सम्पन्न हुए हैं, उनमें डॉ० श्री गोविन्द चन्द्र पाण्डेय (तत्कालिक अध्यक्ष, इतिहास और संस्कृति विभाग गोरखपुर विश्वविद्यालय) श्री पटितराज रायभर शास्त्री द्विविध 'पद्मभूषण', विभिन्न विषयों के आचार्य एवं अध्यात्म तत्प्रेक्षक आचार्य भा रामानन्द जी शास्त्री 'प्राज्ञ', गुर्नगिद्ध विद्वान्, लेखक और आचार्य श्री सीताराम जी चतुर्वेदी (प्राचार्य टाउन डिप्टी कॉलेज, बनिया), भा लक्ष्मीशंकर यास (सहायक सम्पादक 'शास्त्र') वेद विद्या के गमक गद्य भा रामानन्द सातवलेकर, डॉ० श्री राजरत्ना जी पाण्डेय (अध्यक्ष, इतिहास और संस्कृति विभाग, बनारस विश्वविद्यालय), श्री भिन्न जगदीश कारयप एम० ए० (बौद्ध दर्शन विभाग, वाराणसी विश्वविद्यालय), आचार्य केशवचन्द्र जी मिश्र (प्राचार्य मदनमोहन मालवीय डिप्टी कॉलेज, माटपाररानो (देवरिया), सुप्रसिद्ध नाटककार एवं विद्वान् श्री लक्ष्मणारायण जी मिश्र और आदरणीय डाक्टर वीरमणि जी उपाध्याय (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, गोरखपुर वि० वि०) प्रभृति विद्वानों के कृपागर्भ सहयोग का हम सभी भूल नहीं सकते। उनका व्याख्यान के सम्बन्ध में पाठक स्वयं निश्चय करेंगे, मैं इतना ही कह कर सत्यापन कर लेता चाहूँगा कि जिन विषयों पर उपयुक्त महानुभावों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, उनकी महाराष्ट्र में दूनी वाला रत्न सम्पन्न हाकर भा बाहर नहीं आना चाहता।

यह व्याख्यान माला और इसका पुस्तकाकार संकलन महामना की शती जयन्ती का अत्यंत लाभोपकारी, सायक और महत्त्वपूर्ण कार्य है—एसा इत्यादि विश्वास है।

इस व्याख्यान माला ग्रंथ का उपादेयता का अत्यधिक समृद्धि प्रदान करता वाला है, आदरणीय आचार्य श्री सीताराम जी चतुर्वेदी। आपने अपना व्याख्यान तो प्रदान ही किया है, महामना की जीवनो का विनियोग करके उस और भी अनमोल बना दिया है। महामना की शती जयन्ती में आरंभ से समापन तक आपके निर्देश, आदेश और सुभाव सदा ही अमूल्य और उत्साह संचारक रहे हैं। किंतु यह सभी कायकलाप तो आप ही के थे और इसमें आपका अनुभूत होने वाला आह्लाद ही हम लोगों के लिए सन्तोषप्रद है।

श्री शिखरारायण जी उपाध्याय, जिन्होंने अपने कठोर धर्म से इन पुस्तक को स्वल्पावधि में मुद्रित करके सुलभ बनाया है, सतत धन्यवाद के पात्र हैं।

जिन मूधय विद्वानों ने इस महत्कार्य में अपना योगदान दिया है, यह उनका सहज कृपा की परिणति ही है, उनके प्रति 'आभार' प्रकट करना तो सरासर धृष्टता ही होगी।

इस अखिल भारतीय महामना मालवीय शती जयन्ती और 'व्याख्यानमाला' आदि का बाहर भीतर, आदि और अन्त में, सत्य अनुस्यूत आचार्य केशवचन्द्र जी मिश्र के सम्बन्ध में क्या कहना है—इन सारे महदायाजनों की सफलता ही उनका धरण करती है जिते वे स्वयं उदारतापूर्वक वितरित कर रहे हैं।

इस ग्रंथ रत्न का प्रकाशन बड़ी शीघ्रता में हो रहा है। इसकी जुटियों सज्जन-क्षम्य हैं।

वे सभी धर्मवाद और आदर के पात्र हैं, जिन्होंने इन सभी महत्कार्यों में स्वल्प या अधिक, शारीरिक और मानसिक योगदान दिया है किंतु मैं महाविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रामनक्षत्र त्रिपाठी शास्त्री, एम० ए०, बी० लि० यस-सी का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने तन मन से इस ग्रंथ को इतने अल्प समय में, इस भय रूप में प्रकाशित करा डालने का गुह्यतर भार अपने पुष्ट कर्षों पर वहन किया तथा इनके प्रकाशन-कार्य सम्बन्धी विभिन्न अनुभवों से हम लोगों ने भरपूर लाभ उठाया। आप एक मूक कार्यकर्ता के सजीव रूप हैं। आपके कार्यों की जितनी भी सस्तुति की जाय अल्प है। आशा है इसी प्रकार भविष्य में भी आपका सन्तिय सहयोग मुझे यथा समय सुलभ होता रहेगा। डा० दिलीप नारायण मिश्र का भी परिश्रम फलदायक रहा है। अन्ततः हम उस प्रभु की महा कृपा का स्मरण नहीं भूल सकते, वे सारे आयोजन जिसके लेश के फल हैं।

रामायण उपाध्याय एम० ए०

(सयोनक व्याख्यानमाला)

प्राध्यापक

मन्मोहन मालवीय डिग्री कॉलेज

भाटपार रानी (देवरिया)

शुक्रवार, २२ जनवरी १९६५

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

महामना मालवीय जी

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

१-०-६

द्वितीय खण्ड

वेदिक धर्म से	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	१- ९
वैदिक सिद्धान्तानुसार	प० राजरानेस्वर शास्त्री द्रविड	१०-१५
भारतीय सस्कृति और बौद्धधर्म	गिछु जगदीश पारवप	१६-१८
महामना मालवीयजी और पत्रकारिता	श्री लक्ष्मीशरकर व्यास	१९-२०
कुलगुरु मालवीयजी	डा० राचमली पाटेय	२१-४०
महामना मालवीय के कुछ सस्मरण	प० सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी	४१-४६
त्र्यर्षि मालवीयजी	श्री शिवधनी मिह	४७-५२
मालवीयजी का शिक्षादर्श	डा० धीरमणि उपाध्याय	५३-५५
सस्कृत भाषा और सस्कृति	आचार्य केशवचन्द्र मिश्र	५६-६०
हिन्दू धर्म का विकास	डा० गोविन्दचन्द्र	६३-६६
वर्णाश्रम धर्म और वर्तमान	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	६७-७३
हिन्दी के भक्तकालीन	डा० रामानन्द शास्त्री	७४-८४
साहित्य के सूर्य पर ग्रहण	प० लक्ष्मीनारायण मिश्र	८५-९०
अपराध और दंड	प्रो० राजाराम शास्त्री	९१-९४
स्वास्थ्य और रोग	डा० गंगासहाय पाण्डेय	९५-१०९
A New Approach	Dr V S Pathak	111-121

महामना मालवीयजी

भ्राज से तो वर्ष पहले सन् १८६१ का प्रयाग। भ्राज के प्रयाग को देखकर किसी को गुमान भी न होगा कि विक्रम की बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (सन् १८६१ में) यह नगर खपरल के महाना का एक बड़ा सा ग्राम माना था। तब ये तुली, रोटी, चिकनी सड़कें नहीं थीं, ऊँची ऊँची मटारियाँ और बड़ी-बड़ी कोठियाँ नहीं थीं, रङ्गविरङ्गी फूलों की बजारियाँ और हरियाले घने पत्तों की भुरमुट्ट में ऊँचा सिर करके खड़े हुए खँगले भी नहीं थे। उस समय न तो श्रावण को चुधियाने वाली त्रिजनी थी न त्रिज दहलाने वाले पुतलीघर। हा, इस देहात में त्रिबणी के भक्ता ने पुण्य करके कुछ मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवायी थीं जहाँ से सभिन्-मन्त्रे भगवान के भजन, शङ्ख की गूँज और घण्टे घड़ियालों की टनटन् झन्झन भक्ता का मन लुभाती थी।

भ्राज जहाँ चौक की घनी बस्ती और बड़ी-बड़ी दुकानों का जमघट दिखाई पड़ रहा है वहाँ उन त्रिज तुला जङ्गल या जहाँ साँक होते ही सियारों की हूमाँ हूमाँ और कभी कभी जंगल के राजा की दहाड़ भी जो दहला दती थी। जहाँ भ्राजवन सरकारी अफसर, बकीला और नगर के घनीमानिया के रसीले बँगले चमकते हैं वहाँ उन दिनों जङ्गली जानवर पेड़ा-पेड़ा ठण्डी छाह में या तो लाट लगाते या गहरी माँगा में जाकर बचेरा लेते थे। बस्ती में छोटी छोटी पुरानी चान की पथरीली सड़कें और सँकरी गलियाँ थीं जो मेला के दिनों में थोड़े से ही यात्री नर-नारियों से ऐसी ठगामठम भर जाती थी कि कचे से कचा खिला पड़ता था। उस समय कोई प्रयाग की मर करने नहीं जाता था। जो जाता था वह अपना सुग साज छोड़कर, भोली में सनुघा बांधकर, त्रिबणी में एक हुबकी—वस एक हुबकी—लगाने, और उसका प्रयाग जाना सफन हा जाता था। अब समय बदल गया है। अब लोग घाने हैं मनुआ लटने, विश्वविद्यालय या विद्यालय में पढ़ने, सैर-सपाटा करने, मिनेमा देखने और हाट बाजार करने। अब त्रिबणी का कौन पूछता है क्योंकि अब प्रयाग में मनलुमाने वाले बहुत से प्रलोभन हो गए हैं।

पर ही—एक बान है—गङ्गा और यमुना भ्राज भी उसी प्रकार, उमा बेग घ, उमी उमङ्ग घ, उमी शान से प्रयाग की गोद में एक दूसरे से मिलने के लिए पगची गी दौड़ी चली जाती है—पिता हिमालय की गोद छाड़ते ही उनका बिछोह हुआ—फिर यदि वे दाना बहों इतने हुलास से मिलने का दौड़ें और उनके उल्लास-पूष्य बेग उमा वर्षों में उनका उमड़ते हुए प्रयाग से प्रभावित होकर भारत का प्रधान मन्त्री गमाहर लाल उनमें अपना पारिव शयशेष मिलाने के लिए उरकटित हो उठे तो प्रारचय ही क्या? और फिर अल्पवय के अपनी गोद में गमाले, यह दुग—मनवर का बनवाया हुआ वह गढ़ भी ज्यो का त्यो लहा है, मुगला के वैभवपूर्ण सुनहने त्रिज की, ज्वलत, मधुर और मन्दिर स्मृति लिए हुए, लुटे हुए वैभव की बसक लिए हुए यमुना की ठण्डी कोमल सहरा की थपथपी पाकर खुपचाप राटा है जमे उसमें प्राण न हो जीवन न हो, मात्मा न हो। पर यह तो ससार का चकार है। जो बल या बट भ्राज नहीं है, जो भ्राज है बल नहीं रहेगा।

यह दुनिया सराफ पानी देगी । हर चीज यही धारी जाती देगी ।
जो भारत न जाए वो मुझका देगा । जो जाकर न जाए वो जाती देगी ॥

नीचगण्डस्युपरि च तथा चन्द्रनिग्रमेण । (वात्स्यायन)

[गुण घोर हुआ तो पण्डित के समाज सभी नीच माने हूँ वभी ऊपर ।]

राजनीतिक परिस्थिति प्रयाग ही नहीं, उस ईश्वर हिन्दुस्थान भी त्रिगुणा देगा होगा व
भाज के हिन्दुस्थान को नहीं पहचान सकता । एक राजनीतिक घाघ सगी धी-धरी भगवत बरी गागर-
न जाने कबे सगी थी, पर उसने समस्त उत्तरी भारत को घाघा। घाघ में समा गया था । को १९७१
है कि वह भाग विदेशी जुए को बन्धे से एटान के लिए लगा था, कोई बहुत ह कि कुछ दशा राजाभा
ने अपने सोए हुए राज का लोका सने के लिए लगाई था, कोई जान ह कि बटिया में क्या हूँ भारत
माता का बचन खोज के लिए यह भाग लगाई गई थी कोई बात ह कि पण्डितजी की धर्मोपमा
मात्र धी घोर कुछ नहीं, जिनन मुझ उतनी बातें । जिन्हु घाघ सगी था यः सर है । क्या सगा
धी ? यह प्रत्येक बुद्धिमान् समझ सकता ह । पर सामुच्च बः भाग जितनी त्रिगुणा थी, जितनी विकराण
थी । तन्ना हिन्दुस्थानी घोर अज्ञेय उमका जगत् में जा मरे । यः धर्मो तो सही पर त्रिगुणा बः
सगी थी वह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया । विदेशी जुमा हमार बन्ध गः हः, हः । राजाभा ने घाघ
राज्य सगा के लिए जो त्रिगुणा, जितनी के सगाः बहादुरशाह बन्धे यनाकर रगुन भज त्रिगुणा । उनके
पुत्रों को गोली मार दी गई । महाराजो लक्ष्मीधर ने घोर गति प्राण की जाना गाःब गुप्त हो गए ।
उलटे यह हुआ कि हमारी भाषण की कूट ने अक्षर पाकर भारत माता क बचन को घोर दग्ना व साध बग
दिया । हमारे भाग्य की कुञ्जी सगा के लिए न सही पर उग समय तो सगाः के हाथों में मौप ही
दी गई जिनके प्रतिनिधि लोड वनिः त्रिगुणा भारत के पहले शासक त्रिगुणा होकर घा गए । पर हम
जिम दिन की बात बः रहे हूँ उस दिन घाघ बुभ धुकी थी उमकी राग बः ने गई थी घोर घारों
घोर सजाया छा गया था । तोग घोर बःकी की गडगकाहट बः हो गई थी । गःकी के त्रिगुणा के
पर टग हुए वे कानो के पःडे उतार त्रिगुणा के जिा पर निरपराध नागरिका को अनायास पःड कर
टांग त्रिगुणा जाता था घोर प्रयाग में ही १ नवम्बर सः १९५८ ई० को लोड वनिः का शासन
दरवार हुआ जिसमें अगरेगा का साथ देन वाले कई देशो राजाभा का उन्मत्तायुक्त धनक पःकिया
वांटी गई । अग हिन्दुस्थान फिर चुप होकर बःठ गया, घोर जता दशाका पुराना अन्धकार है, फिर अपने
बान धधे में लग गया मानो कुछ हुआ ही नहीं ।

धार्मिक स्थिति पर विपत्ति कभी अक्षरी नहीं मानी । सन १९६० ई० म त चालीन पश्चि
मोत्तर देश (वतमान उत्तर प्रदेश) पर भगवान इः छठ गए । न बःल उठ न जल बरसा । गाहि
धार्मिक मच गई । ममुा घोर सतलज के बीच में तो तोगा की इतनी बुरी दशा थी कि जिसो को अक्ष
का एक दाना मुह में डालने का नहीं मिला । नौ महीनों तक सगातार पत्नीस सहस्र अक्षान पीन्तों
का सरकारी सहायता घोर अक्षी सहस्र को धर्मोय सहायता मिलती सः पर भी पाँच लाख जीते
जागते प्राणी मूय से सःप-सःडकर चल बसे । जितना भवानक वह अक्षान होगा । वस मही समझिए
कि वे हिन्दुस्थानी थे, सग्य धार्यों की सत्तान ध बात क मुह में पडकर भी उःहान पम नहीं छोडा ।
वे मरते मर गए पर उःहान न ता लूटमार की, न हरया की । पर क्या भगवान इः के क्रोध के ही
कारण यः अक्षान पडा था ? इस प्रश्न का उत्तर सुनकर ही जो जी कौप उठता ह ।

धार्मिक स्थिति हिन्दू धर्म की ताव उस समय धार्यों घोर लहरा में पडो डगमगा रही थी । कई

माँझी थे, खाली हाड और पतवार थामे हुए थे। सत्र जिघर जा करता था उधर अपने अपने मन से खेते जा रहे थे। यूटो नाव पर बेचारा हिंदू धर्म धका, मादा, नि सहाय बैठा भ्रान्ती पुराना नाव खीए जा रहा था। यदि कोई नाव को सुधारने की सम्मति देता था तो वह भ्रपराधी समझा जाता था और नाव पर से ढकेल निया जाता था। उधर बिनायात स दुगरी नाव आ पहुँचा था जो दृढ भले ही न हो पर देखने म धच्छो लुभात्रनी और चमकदार था। बस हमारे नाजवान लगे घटाम घटाम हिंदू धम को नाव पर स बूदने और नये नई नई लुभात्रनी नावों पर चने। हिंदू धम चारदीवारी से घिरी नाव पर चडा बठा था कि उम पर से फाँदकर कूद निकलना भा कठिन था और फादने के बाद भीतर झाना तो श्रयत असम्भव था। बडा कठोर दबदबा था इसलिए अगरेजी पढे लिखे कुछ लोग ने हिंदू धर्म को निलाञ्जलि दी और अगरेजी रङ्ग म ऐसे रगे कि उनका खाना, पीना, उठना, बैठना, बोलना चालना सब अरिजे हो गया। पत्रवाँ हवा का ऐना भोका आया कि इन नये पीधा को उडा ले गया। इतना ही नहीं, वे अपने बाप दादा के धम को कोसन लगे, अपने साहित्य में दाप निवाने लगे, और धार्म्य सङ्कति की जड उखाडने क लिए कमार कसकर अखाडे में आ उतरे।

तत्कालीन शिक्षा पाठशालाआ और मकतमो से लोग उकता उठे थे। पाघामो और मौलवियो के डण्डा न पहने से ही उन्हें डरा रकना था। अगरेजा स्कूल खुलत ही लोग उही की ओर दौड पडे। उस समय एण्ट्रेस परीडा पाम करके लोग घरती पर पैर न रखते थे। समभत थे कि हम न जाने किम दिव्य लोक के रहने वाले ह। सन १९१६ ई० म बनबने, बम्बई और मद्रास म विश्वविद्यालय स्थापित हो गए थे। स्थाप स्थाप पर उच्च शिक्षा के लिए अनेक कौलेज भी खुल चुके थ। उस समय कलकत्ते के प्रसिद्ध हिंदू कौलेज में वहाँ के विरुपात अद्यापक डिरोजिया महोप्य का उडा बोलबाला और दबदबा था। वे परिश्रमी साहित्य और दशन क बडे धवराड विद्वान थे। उहाने भारतीय छात्रा का कुछ ऐसी यूटो पिलाई कि हिंदू विचार्यों बडे स्वच्छद हा उठे, हिंदू धम में शीनमेरा निवाने लगे, यहाँ तक कि उहोन कौलेज से "पारिमतन" नाम का एन पत्र निराना जिममें धादि से अत तक हिंदू धम की नि ग भगे रहना थी और जिस इसी कारण कौलेज के अधिनारिया ने ब द भी कर दिया। इतना हा नहा, वहाँ क छात्रा ने अपना पान पान भी बल दिया और धुआँधार अगरेजी ढग पर मास मदिरा का सेवन करने लग। उनको यह बुचान देगकर ता लागा के कान सडे हो गए और वे अपने लडका का अगरेजी पढाने म आगा पीधा करने लगे। उधर जब प्रश्न उठा कि शिक्षा देशी भाषा में दी जाय या अगरेजा ये लो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सचालका म ही आपस में बडे तूढ म म मची। कोई सङ्घन और अरधी पडने क पच मे था तो कोई अगरेजी। लीड विलियम वेंटिकने यह अगण लीड मजाले के हाथ मौप दिया जिमने उड्डे की धोट कह दिया कि 'योरुप क किमो भी मच्छे पुस्तकालय का एक मालमारा हिंदुस्ता और अरध के सार साहित्य के बराबर ह।' उसने अगरेजा शिवा का ममयन करते हुए स्पष्ट कह दिया—'हम चाहते हैं कि भारतीय कल रग में भारतीय रहें, शप भाचार, विचार नापा और अ्यहार में अगरेज हो जाय। फलन माइकल मधुसूदन न्त जैसे लोग डिरोजिया महोदय के रङ्ग में रग गए और जनेऊ उतारकर गिरजाधर में जा पहुँच। उहाने सन् १८६१ में अपना प्रसिद्ध मेयनात्रय काण्य निवा जिसमें उहाने राक्षमा का गुन बसाना और राम लखण का जो अरजर कागा। इसीम समझा जा सरता ह कि उस समय हिंदू युवकों की का नशा हो गई थी।

दार्शनिक और सामानिक प्रवृत्तियाँ उस समय सत्र राजा राममोहनराय (१७७६ १८३३) का अन्त ममात्र कन कून चुवा था और बराबच्छ सेन (१८३८-८४) भी अपना सुधार मादोलन प्रबल

कर लिया था। श्रीरामकृष्ण परमहंस (१८३३-८६) ने उधर अपना वनांतरण करगाना प्रारम्भ कर दिया था और उनके यह शिष्य स्वामी विषणान (१८६३-९३) ने सऊड़ी के राजा गाइब की सहायता से समरीका में शिनामो के सचपम सम्भला में हिन्दू धर्म और ज्ञान के दूषण से विरत को विन्मिप्त कर लिया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपना गुप्त स्वामी विरजान जी को गुप्त-शिष्या देकर वस्त्र धर्म का भ्रष्टा खेतर निकल पड़ थे। सऊट के समय भी हिन्दू धर्म बड़ी कठिनाता से पुराने डांड की धामे हुए प्राची के सभी भागे गहता हुआ गड़ा रहा क्योंकि धर्म धर्म मीमी उमरी पतवार धामते चले जा रहे थे।

हमारा व्यवसाय ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तानी हस्त मुशान बसाकारा और व्यापारियों के झूठे काट लिए। हमारा व्यवसाय धुञ्ज हुआ पड़ा बराह रहा था। उसमें १ तो स्वयं उठार गड़ा होने का दम रह गया १ कोई उगे सारा देनाना ही निर्गई पड़ रहा था। जव-जव उगा उठन का प्रवत्न किया तब-तब उसे छुड़ा गिावर निटा लिया गया। सन् १८५१ में समरीका की भी लडाई की प्राग तापन की धुन चला। समुन राय समरीका के उत्तरी और दक्षिणी प्रांता में घमा खान लडाई प्रारम्भ हो गई। लज्जशापर (इगलड) के हई के पुतलोपल को द्रुगग गरा धरना लगा क्योंकि उनकी हई बही स धाती थी। भारत प्रगिष्ठ व्यापारी प्रेमचन्द रायधर और प्रगिष्ठ पारसी व्यवसायो जमशेजी नसरवानजा ताता न इग धरगार से लाभ उठाया और यहाँ से हई भजकर इवयावन करोड रुपये कमाए और इसी विराट लाभ के वारण ही बम्बई धान का बम्बई का गया। पर पाँच वरस में ही वह लडाई बन्द हो गई जिमग इन भारतीय व्यापारियों को बनी हानि भी उठानी पडी। पहली जुलाई सन १८६५ ई० बम्बई के इतिहास में बाना जिन समभा जाता ह। क्योंकि भ्रष्टानव युद्ध बन्द हो जाने से सहसा धनी निधन हो गए और निधन भिरारो बन गए। विन्तु ताता ने फिर बुद्धिमानों के साथ भारत में ही हई का व्यापार चला लिया और विनायत स काम सोसकर यहाँ पुतलाधर खोल लिए।

यह थी भारत की दशा सन १९१८ में—सन् १८६१ में।

हाँ तो उला दिना प्रयाग में चौक के दक्खिन की ओर सुष्यकुण्ड का सालडिगी नाम का एक मुहल्ला था जो आजकल मालवीय नगर भारतीयभवन रोड कहलाता है। इसी मुहल्ल में उस समय एक नाला था जिसके पास ही कुछ ब्राह्मणों के घर खड थे, जिनमें से कुछ तो बसे ही थे जसे धर्म भी १ए बङ्ग के पक्के मकाना के बीच अपनी पुरानी पारपरिक स्मृति और धरना धस्तित्व लिए हुए धरनी धानि म घडियाँ गिनते हुए मूक खड ह। उसी मुहल्ले के दक्खिन की ओर पीपल और धेर का धना जङ्गल था जहाँ हावीदान लोग अपने हाथिया की पीपल के पत्तों का भोज देन के लिए निरतर सात रहते थे। धर्म भी उन पुराने पीपल के पेडा म से कुछ, नवीन सम्भला के बुल्हाड से जान बचाकर अपने भावी विनाश के भय से धापते हुए पक्के मकानों से धिरे कही-कही खड दिखाई दे जाते ह।

घात २५ दिसम्बर सन् १८६१ की ह। प्रयाग में उस जिन कडावे का जाडा पड रहा था। सन्धा फून चुकी थी। लाग दिया बत्ती करवे धरा में बडे धाग ताप रहे थे। उसी दिन इसी साल डिगी (ग्रहिवापुर) के बूचा सावलगास मुहल्ले में पीपल कृष्ण अष्टमी, बुधवार सम्बत १९१८ (२५ दिसम्बर सन १८६१ ई०) की—ठीक उसी दिन जब १८६१ वष पहले बलहम में साधु महात्मा रसा का जन्म हुआ था—भारद्वाज गोत्रीय श्रीगोड चतुर्वेनी पण्डित व्रजनाथ यास जो के घर पराधीन जन्म भूमि की पीडा लेकर, नि सहाय तथा पराधीन देशवासिया की यथा लकर और हिन्दू सनातन धर्म का सच्चा प्रकाश लेकर सौभाग्यवती श्रीमती मूनादेवीजी की पावन कोख से सध्या की ६ बजकर ५५ मिनट पर एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रक्बा गया मदनमोहन।

मल्लई ब्राह्मरा

जब खबर के दर से मानेवाली माननी श्रीधिया के बारण तत्तशिला के नानदीपक का निर्वाण हो गया और सु दर समृद्ध नालदा, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है—'नाल दा हसतीव सवनगरी । (नाल दा इतनी सुन्दर सुसम्पन्न और सुन्दर नगरी है कि वह विरव की सब नगरिया की हसी उढाती रहती है ।) अपने ग्रन्थों का अपूव भाण्डार लिए हुए ब्रह्मिखार खिलजो की नृशस धर्माघता का श्राखेट बनकर छ महीना तक जलता रहकर भस्मसात हो गया तब भी हिन्दुस्तान ने किस जतन और लगन से अपनी पुरानी विद्या और अपने ज्ञान को बनाए रखला, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है । जब यवन सम्राटा की निदय तलवारों की धार पर चोटो और जनेऊ चगाए जा रहे थे, जब विदेशी भाला की नाका पर वापरा ने अपने प्यारे धम को शूलो देने में भी लाज न की, तब भी हिन्दुस्तान में ऐसे लोगो की कमी नहीं थी जिहाने बडी सासत सहकर, दुख भोगकर, यातनाए भेजकर, शिव, राम और कृष्ण के नाम की माला अपने नएठ में बसकर बांधे रखी । काशी, वाराणसी और मालवा में हिन्दुधर्म का शासन उठ जाने पर भी, उनके मन्दिरा के बगुरा में से मस्जिद की मोमारें निकल जाने पर भी उहाने हिन्दुधर्म को कसकर पकड रक्खा । ज्ञान के बीच में जीभ के समान, सैकडो बपएहरा और प्रभजना का भेलकर भी वे तिर पर चुटिया रखने, गले में जनेऊ डाले पुराने प्रवास की बिलारी हुई ज्ञान विरखा को अपने कएठ में निछापूवक सजाए हुए कही-कही अर भी दिखाई पड जाते हैं । पर बीसवी सदी का प्रगतिमान ससार उह कब तक जीने देगा, यह विचारणोय समस्या है ।

चार सौ बरस पहले कबीरदास ने कहा था— देश मालवा महिर गभीर, पग-पग रोटी डग डग नीर । सबमुव यही बात थी । मालवा का खेत सोना गलते थे । सबके दात मालवा पर गडे रहते थे । भोज परमार (१०१८-१०६०) ने पार (मालवा) में सङ्घृत विद्या सीखने के लिए जो विशाल सरस्वतीभवन विद्यालय खोला था, उसके जोष शीष लडहर बडी कछुआ से भाज भी कमालमौला मस्जिद की मोनारा में से भौंककर अपने विगत बभव की करखा गाया सुना रहे हैं । सब प्रकार स मालवा सुतो था, फिर मला उसकी बढती, मतवाले लुटेरा की झाला में क्या न सटके ! पर जब तक हिन्दू राजा एक दूसरे की बांह पकडे डटकर खडे रहे तब तक बाहरी धक्के उन्हें तिल भर में हिला गये, किन्तु जिस दिन उहाने हाथ छुडानर एर दूसरे पर हाथ छोडना धारम्भ कर लिया उनी दिन से हिन्दू साम्राज्य में भूकम्प माने लगे और एक एक राज्य पके हुए फल का गमान टप-टप गिरने लगा । हिन्दुस्तान के इतिहास में ये नई घटनाएँ नहीं थी ।

पर हम जिस दिन का स्मरण दिला रहे हैं उस दिन मान्यता का भाग्य तो महमूद गौ नामन यवन शासन के हाथ में था किन्तु उमी के अधीन एक हिन्दू राजा की बटे-बटे यह सबक बड़ी कि

ब्राह्मणों के दोना दसा को एक पवित्र में बठाकर भोजन करवाया जाय। इस एक धे पञ्चगोड, दूसरे धे पञ्चद्विण। ये तो दोना ही ब्राह्मण और उाँमें पमशास्त्र के अनुगार कई भे- भी नहीं था पर उनमें रोटी-बटी का व्यवहार नहीं था क्योंकि दोना के रहन गहन, गान पात्र, धान पात्र में प्राकार पाताल का अन्तर था। एक सिन्धु गङ्गा के इरियाले प्रदेश में पहले से दूसरे स्थान के पत्थर में। इस प्रकार के अन्वय अत्याचार और अनाचार अथन शासन-काल में होने ला रही थी निम्न रग गहन तिथि प्रमाण वर्ष (सन्वत् १५०६ विजयमास) में वही के निष्ठाया श्रीगोड ब्राह्मण अपना टाल पाल बाँधकर अपनी जन्म भूमि की नमस्कार करके जियर देगा उपर बनते बन, क्योंकि पाना म रकर के मगर से बँर नहीं मोल सना चाहते थे। उन तत्त्वों बहानिष्ठ ब्राह्मणों को बार-बार अन्वय विना प्रणाम ह जिहाने अपनी अान और अथन गहारा बाण रगन के लिए अपनी जन्म भूमि अथन बाप-दादा की धन धरता की भी लान मार दी। इस युग के लोग एगो बातें गुनें तो गुगार हग र और कह कि ऐसा क्या पागल कुत्त न इहें पाया था कि इतनी सी बात के लिए अपना धन पाम सब छोडकर चल दिए पर जो अपना अान और अथन नियम का मोल जाता ह बहु इन ब्राह्मणों के त्याग के भागे नतशिर हुए बिना नहीं रह सकता।

द्वंद्वर के पास एक कोडिया या कुरहरा नाम का गाव था जहा श्रीगोड ब्राह्मणों की बडी भारी बस्ती थी। उन्हें भी इस सम्मिलित भोज के लिए निमन्त्रण मिला था। अन्त, उरार भी मानव प्रदेश छोडने का सङ्कल्प कर लिया। फलत इनके दो तीन कुटुम्बों के घाट-रग ब्राह्मण पूरव की ओर चल पडे। उन जिनों अच्यो सद्वें तो थीं नहीं, जो थीं भी व भलमानुसा के लिए त्याग्य थी। उन सद्वका पर चोर-लालुभा का ही अलख राय था। दोनो ओर अङ्गल पडते थे। इन अङ्गला में एग निरकुश तथा क्रूर गाड और भील रहते थे जो किसी का भी प्राण सेन में किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करत थे। धनुष पर बाण चढा उन पर बग व लक्ष्य मात्र देखत थे कि यह ठीक ह या नहीं पर तत्र बौन वा रहा ह यह जानने की उ तो उ हें बुद्धि थी न सस्कार, न शिष्टा। ये बेचार कुरहर के ब्राह्मण भी अथन भोलेपन के कारख इँ भोला के हाथ में पड गए। पर कुछ भगवान की कृपा ही समझना चाहिए कि ये ब्राह्मण उन भीला के निर्य हाथों से छूट निकले। पर इनका अत्याचार सेत में ही नहीं हुआ। इहें यह वचन हारना पया कि हमारे कुल के सब मङ्गल बायों म भरवजो की पशा हुआ करेगी और तभी से पूव की ओर घ्राए हुए सभी श्रीगोडों के घर में सब शुभ कामों म कुल देवता का मात्र "कारे गोरे कुरहर के भरो अन्व तव प्रचलित ह। पुढला के लिए हुए इन वचना के पालन का धय श्रीगोडों की गठ-लक्ष्मियों को ही लिया जा सकता ह। मध्यप्रात ओर मानसा से पूव की ओर रहनवान सभी श्रीगोड ब्राह्मणों में इस मान का प्रचार ह।

हाँ तो य ब्राह्मण अथन कुरहरा या कोडिया गाव से पूरव की ओर चलकर बड़ने उड़न पटन तक पहुँच गए। बहुत जिनों तत्र मगध की राजधानी पाटलिपुत्र म उडे रहने ला इनका कुटुम्ब बड़ा यश बढ़ा और उसके साथ साथ इनका विस्तार भी आवश्यक हा गया। सबसे बडी बान ता यर थी कि ये लोग केवल पूजा पाठ करनवाले साधारण ब्राह्मण मात्र नला थे। इहान कएोर तपस्या करक विद्याधन तो अमाया हा था किन्तु विद्या के साथ साथ इहोंने चित्तवशील और सत्कार की भी निद्रि की थी जिमने सोन म सुगंध का काम किया था। वस य विगन, कमनिष्ठ तपस्वी ब्राह्मण जला जग पहुँच बहा बहा पुजने लगे। एक मिश्रजो,—नाम तो ज्ञात नहीं—इनमें से कुछ को प्रयाग की ओर

ले जाए, जिसमें से कुछ तो मोरजापुर (मिर्जापुर) उत्तरप्रदेश में जा बसे और कुछ त्रिवेणी तट पर डेर लगाकर जम गए। मिर्जापुर में अभी तक इन ब्राह्मणों के सौ डेढ़ सौ घर होंगे और प्रयाग में तो अकेले मालवीय नगर (भारतीय भवन) मुहल्ले में ही इनके लगभग पचास घर हैं। नौकरी चाकरी में लग जाने के कारण ये और भी स्थानों में फैलते गए हैं। इनमें से कुछ चतुर्वेदी (चौरे), कुछ दूबे और कुछ "याम भी कहलाते हैं।

मिर्जापुर में जो श्रीगौड़ ब्राह्मण पहुँचे उनमें से तीन घरानों ने अपनी बंबाई छोड़कर व्यापार पर ध्यान दिया। लक्ष्मी इन पर प्रसन्न हो गई, और इनके घरों में सोना बरसने लगा। पर प्रयाग में जो ब्राह्मण गए वे विद्वान और भक्त थे, कथा वार्ता कहते थे, विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और भगवद्भजन करते थे। सत्ताप ही उनका धर्म था, व्यापार में रुचि नहीं थी, विनय के पुतले थे और उठोने-सूरे के आगे हाथ फेरने का पाठ नहीं सीखा था, इसलिए लक्ष्मी तो इनके घर बभी न आई, हा सरस्वती ने इनके घर में अपना मन्दिर अवश्य बना लिया। ये मानना से आण थे इसलिए ये लोग मालई या मनेया ब्राह्मण कहलाने लगे जो पीछे चलकर मालवीय हो गए।

बड़ो का प्रसाद

प्रयाग के श्योनीड ब्राह्मणों में भारतीय गोत्रीय अनुक्रमों की श्रद्धापूर्वकता के पुनर्प्राप्ति प्रेमधरजी के प्रतिष्ठित परमभाग्य हो गए हैं। तबसे ही प्रयाग में पहले अंधरे मुहूर्त उठकर गङ्गास्नान का जाना और घाना तथा दिन रात राधाकृष्ण की पूजा उत्सवों में मने रहता रहा। उनकी विद्वानता थी। वहना सुनना, बान चान, लन देन प्राप्ति राधा गव श्यामर काया से ही होता था। प्रभा कपर जलाकर वे काला की धारती उतारते तो कभी मस्त होकर भगवात के गामन जानन माने—उभा माला लेकर राधाकृष्ण जपते तो कभी भाज में डूबकर स्नोपगठ करते। राधाकृष्ण ही उभा सब कुछ थे।

उनके कहना जो की मूर्ति को गंधारण नहीं है। उभा हाथ ऊंचो साँव रङ्ग की एगो मुद्दर मूर्ति ता गातुन व दानन में भी न हागो। उभा में व समय ही गए थे—

या अनुरागो वितकी, गति समुक्त नहि काप।

ज्या ज्या तूड श्याम रग त्यान्तो उन्नत होय ॥

एक दिन किसी दुष्ट ने यन् मूर्ति ले जाकर कुएँ में फेंक दी। प्रेमधरजी तो ता देना मूर्ति पुनः। पछाड खाकर गिर पडे बच्चो के समान रोने लगे और यानापीना छोडकर मांमारे बड गए, जस उनका सवस्व छुट गया है। कृष्ण उनके सवस्व थे भी ता। उसी मूर्ति के सहारे ता उनकी जीवन चर्या चलती थी। वहा नही रही तो फिर संसार में उनका रक्षा ही क्या। जब तीन दिन तक निराहार बीत गए तो रात को भगवान ने सपना दिया कि हम कुएँ में पड ह निराप वो। अत में कुएँ में स मूर्ति निकली तब कही प्रेमधर जी ने जल ग्रहण किया। एमे समय भवन से वे राधाकृष्ण के।

चारा धार जङ्गल तो था ही। एक दिन एक बाघ के बुरे दिन आए। वह तबसे निकला और उनके घर में घुसकर बड गया। पछित प्रेमधर जी गङ्गा स्नान से लौट तो देना कि भीड तपी है। कोलाहल मचा है किसी का साहम नही होता था कि भीतर पर खणे। लोग के लात रोकने और मना करने पर भी वे अपना कमण्डलु लिए हुए निडर होकर भीतर पहुँचे तो देना की एक बडा सा सिंह बडे तेज के साथ वहाँ चुप चाप बडा हुआ है। इह देखकर वह न तो गुरागा न भपटा। पछित प्रेमधर जी की सौम्य साद्विक मूर्ति के आगे उसकी पशुता टण्टी पड गई। वह सिंह सचमुच विली बन गया। प्रेमधर जी आगे बने और उसके खुले मुह में गङ्गाजल डाल दिया मानो वह सिंह अपनी मुक्ति को लालसा से ही वहाँ आया हो। उसे गङ्गाजल देकर प्रेमधर जी बाहर निकले। फिर क्या था। उन्हें जीता जागता लोटते देख लोगो का साहम बन गया और बात की-बात में बाहर इकट्ठे हुए लोगों ने लाठिया से उस सिंह का कचूमर निकाल दिया।

पछित प्रेमधर जी कितने बडे कृष्ण भक्त थे यह तो एक इधो बात से प्रकट हो जाता है कि

उन्होंने १०७ जिनो में भागवत का १०८ बार पारायण किया था। पण्डित प्रेमधर जी ने चौरासी वर्ष लम्बी आयु पाई। सप्ताह से विना लेने के दिन उहाने अपने सब कुटुम्बिया को आदेश किया कि हमें गङ्गातट पर ले चलो। सारा परिवार प्रेमधर जी को लेकर गङ्गातट पर जा पहुँचा। वहाँ स्नान ध्यान करके प्रेमधर जी पद्यासन लगाकर बैठ गए। थोड़ी ही दूर पश्चात् उस बुद्ध तपस्वी शरीर को अतिम मस्कार के लिए छोड़कर उनका दिव्य आत्मा सदा के लिए राधाकृष्ण में लीन हो गया।

पण्डित प्रेमधर जी पाँच भाई थे। उनमें से पण्डित साधोधर अद्वितीय वैयाकरण थे, पण्डित मुरलीधर ने सायस ग्रहण कर लिया, पण्डित वशीधर सस्कृत माहित्य के धुरंधर पण्डित थे, पण्डित बालाधर अद्वितीय ज्योतिषी थे। पण्डित प्रेमधर जी के चार सन्तान हुईं—लामजी, बच्चूलालजी, गदाधरजी और ब्रजनाथजी।

पण्डित ब्रजनाथ चतुर्वेदी अपने परम भागवत गिता के श्रवण सुयोग पुत्र निकले। अपने पिताजी से उहाने भय सुन्दर देह विमल बुद्धि और राधाकृष्ण की अग्रम भक्ति पाई। उनके पिता के पास और था नौ क्या। सदाचारो ग्राह्य अपनी सन्तान की इमने अधिष्ठा और द ही क्या सकता था। इस महानिधि के साथ साथ पण्डित ब्रजनाथजी ने बड़े परिश्रम और लगन से मस्कृत विद्या की अधिष्ठा और मस्कृत के प्रौढ पण्डित हो गए। सत्कार, भगवद्भक्ति और विद्या, यही उनका धन था, और एक घर था वह भी बहुत बड़ा नहीं बड़ा जा सकता, जिसमें वे अपने चार भाइयों के परिवार के साथ कोठरियाँ बाँटकर रहते थे।

उनका घर क्या एक छोटा-सा बच्चा पकरा भापड़ा था—छोटा सा आँगन तीन और छोटी छोटी कोठरियाँ। नीचे सामने भगवान् कृष्ण का ठाकुर घर, ऊपर सपरल से भाई हुई कोठरियाँ। इसी छोटे से घर में इतना बड़ा परिवार किसी किंगी प्रकार रहता था और इसी घर के नीचे वाली एक छत्तार कोठरी में मन्मोहन का जन्म हुआ था।

पण्डित ब्रजनाथ जी ने अपना कुछ बचपन ननिहाल में ही बिताया और सच पूछिए तो सस्कृत विद्या का कुछ धन उहान ननिहाल में भी पाया था। चौबीस पञ्चोस वर्ष की नई जवानी में ही वे व्यास बन गए और अपने घर के पास ही नौवनाथ महादेव पर भागवत की कथा कहने लगे। सुडील सुन्दर देह के साथ साथ उहें मधुर बण्ड भी मिला था। जब बोलते थे ता गानो मिथी धोलते थे। एक तो मीठी बोलो और फिर ब्रजभाषा—कोमल और बल्लत—सुनने वाले लट्टू हो जाते थे। रीषी परमज्ञा और वाशी के महाराजाभा न उनका उहा सम्मान किया। कितने ही रजवाड इहें गुह मान चुने थे वे वशी यजावर जब गाने थे—

पावो मधुरा गोपा मधुरा यष्टिमधुरा गृष्टिमधुरा ।
 दलित मधुर वलित मधुरं मधुराधिपतेरसिल मधुर ॥
 हृत्प्य मधुर गगन मधुर वचन मधुर चरित मधुरं ।
 वलित मधुर चरित मधुर भ्रमित मधुर दलित मधुर ॥
 धधरं मधुर धदन मधुर नयन मधुर वसन मधुरं ।
 हृष्टित मधुर वलित मधुर मधुराधिपतेरगिल मधुर ॥

तो मधुरा ऐगा मधुर वीमूष रीत बहने लगता था कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर नाच उठते थे। उनकी कथा इतनी भावमयी होती थी कि—कभी हंसत तो कभी रोते कभी आदेश था तो कभी पूष शांति। जान

पड़ता कि नाट्य शास्त्र के गार रग पण्डित ब्रजनाथ व्यास जी के रूप में साधारण ह्राकर विराजमान ह । नये-नये उद्भरणों उन्महरणों और दुष्टता से राजाकर शा न, गम्भीर तथा साम्य भाव से जब वे भगवान् की कथा का गरग रग बाँटते थे उगता पण्य करन का सामग्य विगमें ह—विग घनपन, नयनविनु बानी ।

वे मधुर भाषी और विनय तो थे ही पर सातोषी भी पूरे थे । उ होंने कभी किगों के घागे ह्राप नहीं पतारा । जो कुछ उनको कथा पर चढ़ गया उगो व उ होंने काम बलनाय पर विगों से न तो दान लिया, न भिक्षा माँगी । मृदुभाषिता न बोध की और गन्तोव न साम को उनके पाव पञ्चन ा विग इसीलिये इतन बडे परिवार को सेवर भी व पूण्यन गुगी रट । वे पण्डिताऊ बङ्ग का कभी ा भङ्गा पहले और तिर पर चौमोशिया टोपी या पगड़ी लगात थे । उनके गन में सा दुपट्टा पड़ा रतना जिम पर जाँचे के विना में व एक दुसारा घान विग करते थे । बाहर व घान पर व सा वाहरी कपडे उतारकर एक और रग विग करते थे । एक बार एग हृषा कि व बही पर बीने लड कर रहे थे । भवानक एक भ्रंगरेज भयिकारी उवर से घा विरता और उगत दागे कुछ द्रन विग । य मौन भाव से घना पाठ करत रहे उगका इदान कुछ उतार नहा विग । उगता सभभा कि ये सेरो उवेचा कर रहे ह और इगलिय उताने इ हें बेंत से छू विग । व सत्काल पर लोट भाए और उ लने गोबर मतकर सचल स्नान करके फिर पञ्चगम्य तथा पञ्चामृत प्रण्य करने उ होंने घनी शक्ति की । इतने आचार के पक्के थे पण्डित ब्रजनाथजी ।

सौभाग्य की वर्षा जब होने लगती ह तो वह भरपूर होती है । पण्डित ब्रजनाथ व्यासजी का विवाह सहजापुर में हुआ । सौभाग्य से इनकी घमपती श्रीमती मूनादेवा जी बडी सरल और कामल हृदयवाली मिलीं । घडोस पडोस को जो सेवा बन पड कर देना और सबसे प्रेम व बोतकर बडी शक्ति से सारे घर भर का काम देखना यही उनका काम था । व विनी को दुगो देख ही न थीं तकती थीं और इमलिय उनको उगतरता निस्सङ्काव भाव से हर घणो सेवा का प्रवणर कृती रटती थी । उ हान किशो की निराश नहीं किया । मुहले भर के सब बच्चे उनके घर के बच्चे बन गए थे । सबको पार से बुलाना बठाना पुचवारना, कुछ खिला पिला देना—बस बच्चे यह नई माना पाकर घपनी घपनी मानाघा को भूल गए थे ।

सचमुच ऐसो दयावती माना पाने के विग बडा भाग्य होना चाहिय । पण्डित ब्रजनाथ जो भी जो कुछ कथा में पाते थे सब उ हें गौप देते थे इस छोटी सी वंजी से सारी गृहस्थी व न जाने कसे सभालती थी । पंडित ब्रजनाथजी वय में एक बार प्रयोग स बाहर भी कथा कहने गाया करते थे जिसम उ हें पर्याप्त दक्षिणा मिल जाती थी किन्तु उ होंने जो कुछ घन-व्ययन मिल जाता सब साकर पानी घर्मपती के ह्राप पर सौंघ दत थे कि लो वप भर इसी से काम बलाना ह ।

सन् १८५७ की घात ह । वे प्रति वप के प्रमानुसार उस वर्ष भी कथा कहने बाहर गए हुए थे ।

इनी बीच सन १८५७ का विद्रोह भडक उठा । ये प्रयाग लीट तो देता कि भ्रंगरेजों का दमन चक्र चरम सीमा पर पहुँच चुका ह । चौक में पटुचते ही देखते कथा ह कि पसरहट्टे के सापने वाले नाम के पेड पर शव लटक रहे ह और सगीनघारी गोरे वहाँ टहल रहे हैं । यह देखते ही य सोल में येना हुआ घपना तानपूरा लिए दिए घर की और भागे । घमो ये दत पग भी भागे न बडे हीगे कि गोरा ने इ हें पकड लिया और तानपूरे की और सनेत करके पूछा, यह कथा ह । इ होंने किशो किशो

प्रकार सकेत से समझाया कि यह गाने के साथ बजाया जाता है। गोरों ने कुतूहलवश यज्ञाने को कहा तो इन्होंने 'नाथ बसे गज के फंद छुड़ाए' गाया तो तत्काल भगवान् ने उन गोरों को प्रेरणा दी और वे निरपराध समझकर उन्हें घर तक पहुँचा आए।

पण्डित ब्रजनाथ जी को जीवन वष की अवस्था में रोग ने ऐसा घर दबाया, ऐसा पक्का कि फिर वे बाहर न निकल सकें। यद्यपि पाँच महीने में ही इन्होंने रोग से छुट्टी ले ली, किन्तु पुरानी शक्ति न लौट पाई। तब से लेकर सतहत्तर वर्षों की अवस्था तक वे बराबर भागवत, रामायण आदि ग्रन्थों का अध्ययन और उनकी मनाहर व्याख्या करते रहे। उन्होंने एक भक्ति प्रतिपादक 'सिद्धांतपूर्ण नामक ग्रंथ भी लिखा था, जो सन १६०६ ई० में अमृतदय प्रेस द्वारा उनके तीसरे पुत्र मदनमोहन ने प्रकाशित कराया। लगभग साठ वर्ष की अवस्था में उनकी भ्रात्रे विगड गई। लखनऊ के कनक एण्डरसन ने उनकी चिकित्सा की। कर्नल ने कहा कि 'भाज तब इतनी अच्छी भ्रात्रे सुघराई किमो की नहीं हुई। सावधानी से रहना, हिलना झनना मत। दो घण्टे परचाल प्यास लगी। आप उठकर पानी पीना चाहत थे पर आपके पुत्र श्यामसुन्दर के रोकत पर आपने पढ पढे पानी पी लिया। पर उनकी धार्मिक भावना सत्या को खटिया पर पढ हुए शौच करना न सह सकी, मत वे उठकर गए और नित्य कम किया और नित्य नियम के अनुसार थोड़ी-सी भांग भी ली। यह सब कुछ होते हुए भी उनकी भ्रात्रे ठोक उतरी।

डाक्टर के मना करत पर भी उन्होंने अपना पढ़ना लिखना न छोड़ा पिछले दिना में उनकी पारणाशक्ति कम हो गई थी। उन्हें यह भी स्मरण न रहता था कि भाजन किमा है या नहीं। सुप्त और दुःख दोनों उनका लिये समान हो गए। अपने बड़े पुत्र की मृत्यु सुनकर वे 'हरिद्वेष' बह कर रहे गए। उनके मुख पर किसी प्रकार का शोक या विपाद नहीं दिखाई दिया। अन्त में सन् १६१० ई० में सतहत्तर वर्ष की अवस्था में उन्होंने भी गौलीक का शरण ली।

भगवान् की भक्ति का प्रसाद मालवीय परिवार में प्रसक्त दिखाई देता है। बड़ा भारी परिवार—पुत्र-पुत्रियाँ नाती-नीति, घर में दुःखरू गोए—सभी प्रकार का सुख है। जिस कहते हैं—दूधा नहाया पूजा फलो वह आशावाद ब्रजनाथजी की प्रत्यक्ष मित गया था।

पण्डित ब्रजनाथ जी के छ पुत्र और दा ब्याए हुई। क्रम से उनके नाम हैं—लक्ष्मीनारायण सुवर्देई जयकृष्ण, सुभद्रा, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर और बिहारी लाल।

सबसे बड़ पुत्र लक्ष्मीनारायणजी ने महाजनी की शिक्षा पाई थी। थ कुछ दिन प्रयाग के लाला मनोहरनाथ के यहाँ मूनी रह किन्तु थान् दिन पीछे इसे छोड़कर अपना स्वतन्त्र धार्मिक काम करने लग और अत तक यही करते रहे। इषयात्रन वष की अवस्था में बंदीनाथ यात्रा से लौटन पर उन्हें 'पवत सप्रहृष्टी हो गई और उसी में तीन चार महीन क परचाल आपका शरीर पाठ हा गया।

जयकृष्णजी थोड़ी गहन और अंगरजी जानने थे और रत्न के हाथ विभाग में काम करते थे। इनकी बचपन से ही व्यायाम का असन था। कुरती बहुत अच्छी लडत थे, सङ्गीत में बड़ी रुचि थी, सितार बहुत अच्छा बजाते थे। कहने हैं कि सितार में उनका हाथ इतना तीव्र था कि किसी ने ईर्ष्यावश जादू-टोना चला दिया, जिनमे आपके हाथ में इतना बन्ध हुआ कि जिन रात नींद नहीं आया करती थी और बिज्जलाय करत थे। लगभग बीस जिन के परचाल एक साधु भिक्षा मांगते हुए उपर निजल भाया जिनने पूजा पाठ आदि करके उसी जिन उन्हें अच्छा कर दिया था। लगभग इषयात्रन वर्ष की अवस्था में उनका भी शरीर पाठ हुआ।

श्यामसुन्दरजी न पढ़ने धमजाओपदेश पाठशाला में शिक्षित की शिक्षा पाई। फिर उद्धाने पाडा अगरेजी पनी। पञ्चोत्त वय की अरुहस क लगभग घात बाड घोऊ रेश्मू के अतर में जाय करना प्रारम्भ किया, सन् १९२१ ई० में वे सन ली, तब वे य विरार पूरा पा कर रगे और सन् १९४४ में दिवगत हुए।

मनोहर सात न ओ पाडो सम्पूत और अगरेजा की शिक्षा पाई थी। इसी युक्ति बडो तोय थी और बड होनहार थ। विवाह हा। वे पाङ्क ही वि पोष उ । न जान विग कारण अनीम सा ली। डाक्टर आए विचकारी देतर विग निगरना गया। था में सात का मय उताय हुए विरु रका म भिन् चुका था मनोहरसात अपनी नर विरोधिता यथु न। अने ती घोषकर दूगर सोर को चा गण। पुलिस पहुँचा। मृयु पराडा क लिए सन मीगा गया। उय समय सरकारी डाक्टर म् ताय मा पर न क्हा—मिट्टो ह्माटे हा पास ता पराडा क विग भजाय। मन पराडा कर ती ह। म प्रमाणिक करता हू वि अक्रोम सात य मृयु हुई ह। तब पुलिस ह्यो और गह म्हातर हुआ। हा भाडा म यही एक युवा मृत्यु हुई थी।

विहारोत्तान न भा सरकृत और अगरेजी पङ्गी थी, पर अगार की अर इनकी अधिन प्रनुति थी। वे ठेकेदारो किया करत थ और रेलक के प्रधान टकाला में स थे। सप्रहणो हात के कारण सन् १९२१ ई० में आपका भा स्वगवास हा गया।

बडो बहन सुतदेई का विवाह मिर्जानुर म हुआ था। ४८ वय का अरुम्वा (सन् १९०१) में उनका शरारात हुआ। उनरो अन्त गाननें हुई पर कोर् गोविन न रहा।

छोटो बहन सुभद्रा का छोटी अवस्था से ही अथयदु ल भागना पडा।

मन्मोहन न अर्माया परम भागवत दाता और परम भगवद्भजन तथा विज्ञान विता का अमर प्रसात और उनको धार्मिक छाया लेकर उाके सम्पूर्ण गुणा की वपनी पातर जम लिया था। पितामह और पिता की भगवत्भक्ति का मदनमाहन पर पुछ वम प्रभात नो पडा था और इमोलिए सारा भारतीय राष्ट्र पखित प्रेमधर और पण्डित अजनाय व्यागजो के अमर पवित्र गुणा के साक्षात मूर्तिमान् स्वरूप मन्मोहन की उस अवल मूर्ति को और साजना था मानो उसका सारा भविष्य, उसका सारा मुग उसकी सारी अमिलापाएँ उती एन अवल देह म धिपी हुई हा।



होनहार विरवान के होत चीकने पात

मदनमोहन के जोवन की भाँकी पा लेने पर किसी को भी यह मानने में सकोच न होगा कि उनका 'मदनमोहन' नाम भी किसी दवी प्रेरणा का ही फल है। परम भागवत वैष्णव परिवार में भगवान् कृष्ण का नाम छोड़कर दूसरा कोई नाम टिकने ही क्या लगा, कि तु मदनमोहन 'किसी' दवी शक्ति के भेने हुए आए थे और इसीलिए इन्हें बड़ा मधुर और कोमल नाम मिला, वैसे ही कोमल जसा मकलम और वैसे ही मधुर जैसी मिसरी।

यद्यद्विभूतिमस्तत्त्व श्रीमर्द्विजतमेव वा । तत्तदेवावगत्य मम तेजाशसम्भवम् ॥

[ससार में जितना भी कुछ विभूतिमान, श्रीमान और ऊँजस्वित है उस सबको मरे तेज के भ्रश से उत्पन्न समझो ।] भगवान् श्रीकृष्ण के इन कथन के अनुसार महामना मालवोदजी भी भगवान के साक्षात् 'तेजाशसम्भव' ही थे।

'मदनमोहन'—शब्द एक बार मुँह से उच्चारण करने मात्र से ही जान पड़ता कि आपकी रसता पवित्र हो गई है, जो हल्का हो गया है और मुँह की कड़वाहट जाती रही है। एक उदू कवि ने एक बार सच कहा था —

है मदनमोहन मेरी मनकाका मजमू । क्या अजब इस नाम में जादू भरा है ॥

जान पड़ता है पण्डित वजनाथ व्यासजी का 'बलित मधुरम्' की धारा में यह नाम भी आ गया होगा, जिस लेकर उरान अपने पुत्र को नाम प्रतिष्ठा की।

माता की गोद से हँस-खेलकर बालक मदनमोहन ने अपने पैरों पर लटा हाना प्रारम्भ किया और धीरे धीरे बालक बड़ा होने लगा। इनके परिवार की चाल है कि जब घर में ब्याह पड़ता है तो 'माय' बठती है और सभी बालका का मुण्डन हो जाता है। इसी कारण कभी दो वर्ष पर, कभी छह महीने पर या कभी-कभी तीन महीने में ही बालक मुंड जाते हैं। वस, ऐसे ही एक अवसर पर मदन मोहन का भी मुण्डन हो गया।

पण्डित वजनाथजी ने अपने पुत्रा को शिवा देने में यह भूल नहीं की थी जा आजकल पश्चिमाश सोम किया करते हैं। पुरान पण्डिता के समान उन्होंने अपने बच्चा का पहले घर पर ही संस्कृत पढ़ाई, शिष्टाचार की सोम दी और सब बड़ी उन्हें घर से बाहर पैर रखने दिया। उनका फन यह हुआ कि बाहरी जग बाय उन्हें न लग सकी। आजकल के माँ बाप अपने बच्चा की देख रेल बेगार समझते हैं और उनको, जितनी शोष होता है धीरे मुँकर किसी अनाडी अध्यापक या किसी विद्यालय के

हाथ सौंप देते हैं, जहाँ वे परोक्षा भन्ने ही पाग कर ल, पर घाना गब कुछ धारण गनीं भाते हैं। गब इस बात को जानते भी हैं, पर जान बुझाकर भी घान बन्ना को भट्टी में भाता। ग तच्छान नहीं करते। हमारे पुरसा लोग इस बात को भनो भानि गमभने ये कि पाठशाला ग स्तूना म जाण बहुत प्रवार की सङ्गत मिलती ह। उनमें गभी तो पारस होते गरीं इगनिये घान बन्ना को गगा पक्का बनाकर भेजते थे कि दूसरा रङ्ग चढ़न ही न पावे। मन्मोहन पर पर ही पढ़ा गोगा, नागरी घघर सीसे घौर किर सस्कृत पढ़ी। घना दाग घौर रितात्रा स रि ग गुनो-गुनन बहूत ग रलोक, भजन, स्तोत्र घौर गीन मन्मोहन की स्मरण हो गण प। बानन म भनोहन का मुहने म स्थित एक नि शुल्क श्रीमन्मोहन पाठशाला भी जिगका नाम घाने चलन। 'श्रायमज्ञानादेश पाठशाला खला गया भरती करानिया। किन्तु वह पाठशाला उतरे विरक्त सागानो गगारा श्री हरदेवजा ने नाम पर 'हरदेव गुरु की पाठशाला' कहनातो था। आहरदव जा बड नि ग्गु किन्तु बडार रागग अघ्यापक थे। वे पढ़ाई की घाना छात्रा व भाषार विचार, वरा भूगा, गघ्याव ग घौर ग गरण पर विशय घ्यान दत थे। घपनी आगन नीति व सम्बन्ध में उटान यह कविता लिगार टगना िया पा—

उच्च कुल में जन्म पाय अक्षर न जाय सुख ।

गन्त गवार भुख बँठ सुख संग में

हाय-पाव बाधि लटकाय मारे बँतन व

घादमी बनहीं दुम्में लो भस दग में।

किसका क्या दड िया जायगा यह पहन से ही निलकर एक कागज पर टाँग दते य अते उनके एक ऐसे हो घादेश पत्र पर लिखा मिला ह—

शिव सहाय घाज मुखळ घोती (कमर में फँटा बांधकर पहनी दूई) पहनकर घौर बिना च दन लगाए पाठशाला में घाया ह इगलिय यह जूता उतारन की जगह पर एक घन बठ ।

दड भोग चुकन पर शिवसहाय का माये पर बान सगाना पहा लोगा घौर पणिनाऊ (चुनिया कर घाय सासकर) घोनी पहननी पनी होगी ।

पडित हरदेव जो बडे नि स्पह, तपस्वी मनस्वी घौर तजस्वी महापुरुष प। ये सभ्या पूजा करके मुहल्ले के किसी भी घर के भाग खडे होकर भिछा के लिय पुकार दत प। यणि वहाँ मिल गया तो ठीक नही ता लौट आते थे घौर कई कई िना तब निराहार रह जाते थ दूसरे व घर नही जाते थे। उनकी इस तपस्या का पान होने पर लाग उस्तुव होकर उागो प्रतोचा भी करन लग किन्तु व अथडा की भिछा नही लेते थे घौर पैसा रुपया नही छूते थे। एक बार एक पनासा घनी निछा का घान लेकर पाठशाला म ही पहुँच गए। पडित जो ने पुछा— थडा से नाए हो ? उ हान कजा— 'हाँ तब पडित जो ने उन स कहा कि यदि थडा से लाए हो ता घाय घट धूप म सडे रहिए। जय वे घाय घट खडे रह गए तब पडित जो न उस बाल म स बोडो सो सामग्री ले ली घौर शप लीग दी ।

ऐसे तपस्वी गुरु के पास घपने दादा घौर पिता का आशीर्वाण लकर मन्मोहन भी पण्डित हरदेवजा की घमनानोपदेश पाठशाला म पान बठा िए गए। व पाठशाला घब भी मालनीय नगर भारतीयभवन मुहल्ले में पूज्य मासवीय जो के मकान के दक्खिन की घौर विद्यमान ह घौर पण्डित हरदेवजी की पाठशाला के नाम से ही प्रसिद्ध ह ।

कुछ िन वनीं पन्ने के परचात वे विद्याधमप्रवडिनी सभा की पाठशाला में भेज गए। उनके सर्वेसर्वा थे पण्डित देवकी नन्दन जो। ये मन्मोहन को माघ मल पर ल जाया करते थे घौर एक

मोठे पर खड़ा करके व्याख्यान दिलाया करते थे। सात बरस का बालक सारे राष्ट्र की नौजा खेने का पहला पाठ त्रिवेणी सङ्गम पर सीखने लगा, जहाँ विश्व भर की तीना पावन धाराएँ न जाने किस युग से आकर मिलती रही हैं।

श्रव नीच पक्की हो गई थी। नौ बरस की अवस्था हुई। पिताजी ने बालक को बटु बना दिया। पिताजी ही प्रथम आचार्य बने, उन्होंने ही सावित्री मंत्र दिया। कौपीन पहने, पलाशपत्र लिपि, कंधे पर मृगछाला डाले, हाथ में भोलो लिए हुए, मन्मोहन ने माता से जाकर कहा— 'भवती भिक्षा में देहि।' उस समय कौन जानता था कि कौपीन उतार देने पर भी, मगछाला और दण्ड फेंक देने पर भी एक दिन यही बटु बहुत बड़ो भोलो लेकर द्वार-द्वार, नगर-नगर सारे राष्ट्र के त्रिवे मिच्छा मांगेगा और 'भसार का सबसे बड़ा भित्तारो' कहलाकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना करेगा। गचमुच जिसे विश्वास था कि उस 'भवती भिक्षा में देहि' के पीछे कितने निधन, नीत विचारधिया की विवशता से भरो हुई करुण भिक्षा-पुकार छिपी हुई थी। श्रव मदनमोहन ग्राह्य का गए।

बहुन से दबू बालक पाठशाला का नाम मुनकर रो देते हैं, किसी के सिर में पीटा होने लगती है और कोई-कोई तो सचमुच रोगी हो जाते हैं। पर मदनमोहन ऐसे बालक नहीं थे। नित्य प्रातः काल नौ और नम बजे बीच, सड़के बाँल में पीयी दवाएँ हँसते-भूँते स्कूल जाने थे, नई-नई वार्ड करते थे, इतिहास और भूगोल, गणित और चित्रकला का बखल किया करते थे। मन्मोहन के मन में भी लालसा हुई कि हम भी क्यों न अंग्रेजी पढ़ें ? पर स्कूल में फीस लगती थी। जिस परिवार में दम मुह तिलाने पड़ते हैं और कमाने वाला एक ही और वह भी ऐसा हो जो किसी के सामने हाथ न फनाता हो, जो क्या पर चढ जाय, उसी पर सन्तोष कर लेता हो और जिसे पाँच रुपए महीने की भी प्राय न हो, यहाँ स्कूल की फीस और पुस्तका के लिये पैसा कहाँ से आवे ? पहले सरस्वती जो दोना की कुटिया में दूखी सूखी साकर भी प्रसन्न हो जाया करती थी, पर आज-कल की सरस्वती जो बिना पैसे बात नहीं करती। दोन घर भाने में उन्हें श्रव सङ्कोच होता है। जान पड़ता है उन पर भा कुल परिचय का प्रभाव हो चला है।

पर पण्डित व्रजनाथ जो ने अपने होनहार बच्चे का मन छोटा नहीं हाने लिया और पेट काट कर भी उसे अंग्रेजी पढ़ने बिग प्रकार भेजा वह क्या भी कम करुण नहीं है। मन्मोहन की भगनाममी माताजी ने अपने हाथ के बड़े पड़ोमी महाजन लाता गया प्रसाद के यहाँ गिरवी रख लिए और फीस दे दी गई। फिर हाथ में पैसे भाने पर बड़े छुटा लिए जाते और फीस के समय किसी के के यहाँ गिरवी रख दिए जाते। और इसी बड़े के सहारे मन्मोहन की अंग्रेजी की पढ़ाई चलती रही। मन्मोहन इलाहाबाद जिला स्कूल में उस समय की दसवीं कक्षा (सबसे छोटी कक्षा) में भर्ती हो गए थे। प्रयाग के चौक में घण्टाघर के पीछे जिस भवन में आजकल नगर-महापालिका कार्यालय है उसी में पहले जिला-स्कूल लगता था। एक अंगरेज गार्डन साहय उसके हेडमास्टर थे स्कूल में समय से जाना पड़ता था, पर मन्मोहन का प्राय देर हो जाया करती थी। इतने बड़े परिवार में ठीक समय से भोजन बन भी कैसे तकता था और फिर ठाकुर जो की भोग लगाए बिना कोई भोजन कर भी कैसे तकता था वेचारे मदनमोहन को विवश हाकर मट्टे के साथ वासी रोटी साकर स्कूल जाना पड़ता था। कितनी बनी तपस्या थी। थोड़े ही दिनों में इन्होंने स्कूल में अंग्रेजी शब्द विभाग, उच्चारण और मुन्कर लिपि में बड़ी स्थानि प्राप्त करती और यह शुद्ध मयूर बोलने और मुन्कर लिपि का प्रयोग उनका बात बन रहा।

य पढ़न में बहुत सा सगाव ये पर गणित में बच्चे ये घोर संभरा गंगार के गभा मझाएग
 गणित में बचन रह ह, पर परिश्रम करके इतने धनती ग बभी भी पुरो कर सी। इनका ताग गा
 पर दस-बारह प्राणियों के जिसे छोटा ही था। पर पर पढ़न की सुविधा नहीं थी। बाग बगान के
 घर में कोई चाहे कि बठकर सा सगावर पड़ से, मरू बने हो सक्ता ह। कोई रो रहा ह
 कोई चिन्ता रहा ह, कोई गा रहा है—कोई चल रहा है—गब धनती प्राणी मस्ती में है। फिर भला
 भला यहाँ पढ़ाई कते हो। इनके पर ये पाग ही घोर दूर पर मोहतामन की बगिया में इतने एक
 साथी गङ्गाप्रसाद रहते थे। यहाँ तीन चार बेर के पढ़ ये एक कुर्सी या घोर एक बच्चो घटाते थी।
 बस जहाँ भला हूँ कि ये सालहन घोर पोधी सक्न वहीं पहुँच जाने घोर पढ़ा करने थ। मरू ता
 नहीं बटा जा सक्ता कि जितनी पढ़ाई होगी चाहिए थी उतनी हाती थी, पर ही, पर से ही अधिका
 ही होती थी। यथाकि गहाँ दो विद्यार्थी साथ पढ़ते हा वहाँ साथी गप होती ह घोर साथी पढ़ाई
 भर की दर था, फिर तो कोई हाती ह। मही बात यहाँ भी थी। मन्मोहन याग करन में तो
 एक ही थे। इन्हें कोई साथी मिलन भर की दर, कोई भी विषय प्रारम्भ होत के परचायू गमाएत था हा
 होता था। रात में बही पढ़ते थ घोर यी सोते थ। प्राय वाच उठकर पर यो घारा कर। थ।

पर हमसे मरू न समझिण कि मन्मोहन बड़ पढ़ाकू घोर गाधी के बीन थ। य बगानग
 विलापी घोर बचन बाग थ। स्कूल या घात ही पोधी बग फँगे जूते नहीं उतारे बग कहीं
 डाले, बह गए, बह गए बह गए मन्मोहन पर स बाहर। बभी देगो तो गुन्चो चला गन रह है
 तो किताबिन कवचो हो रहा ह। ब्यायाम भा टटकर किया करत ये घोर नित्य गगा में भुगार
 घुमात या डण्ड रागात थे। धनती बुद्धाप्रस्था में भी ब निवसत ब्यायाम करते रह।

नवुत्व की शक्ति भी जमजात होती ह। मन्मोहन का एक गुट्ट था घोर थ हमने प्रगुप्त
 थे। स्कूल से लौटत हुए प्राय किंगो न किसी दल म मठभट हो ही जानो थी। बभी-बभी तो
 मौखिक युद्ध तक ही बात रह जाती थी, पर यदि बभी बात बड़ जाती घोर टापागाई की नीवत भा
 जानी तब भी य पीछे गरी हटते थे बटपर लोहा लेत थ। य एगे ब्राह्मण गरीं थे जो मन्मोहन
 भाग सभ हा।

होली के दिन में इनकी घशा दलत ही यनती थी। महीना पहले से तयारियाँ हान लगती।
 पिचकारिया में गिट्टी बाधी जान लगती, राहचलता पर फिर से रङ्ग छोडा जा सक्ता ह, य सर
 बातें साथ सी जातीं, स्थान ठीक कर लिए जाते घोर गालडिगो में होली के तीन चार दिन पहल से
 ही घुमाधार पिचकारिया चलने लगतीं, रङ्ग छोडा जाने लगता। पिचकारी भरे सब ताक में सब
 रहते। बह लो, सामने से पण्डितजी पोधी पना समालते चल भा रहे हैं—पिचच। पण्डितजी तर हो
 गए। वे बिगडे पड रहे हैं। 'नहा धोकर भाए थे, सब भ्रष्ट कर दिया।' इधर टहका लगा घररर
 बबोर भले मानसो का उधर स निवल चलना दूभर था। जो इधर से निवले उसक दुगत ही समझे।
 बट्ट से छैने ढाके का चुप्रददार कुर्त्ता घोर चौकीशिया टोपी देकर ठाट-बाट से समलकर निवलते।
 इधर मन्मोहन घोर उनका दल पिचकारी साथे एते लोग की ताक भाग में लगा रहता। बस
 बात की बात में ऐसी पिचकारिया छूट चलती कि कोई रंगरेज भी क्या साकर इतने कौशल से
 रंगगा ? मजाल क्या कि कोई श्वेतवैपी बिना छोटा साए वहाँ से, बिना रंगा निवल जाय।

हानो की साक की पहल-पहल तो कुछ पूर्धिण मत। मदनमोहन की टोनी चौकस होकर

निकल पड़ती थी। घुटमा तब धोती चढ़ाए, वही पेड काटे ला रहे हैं तो वही भटकटया बाट बाट-कर पीचे लिए चले आ रहे हैं। वही से किसी का टूटा मोटा पडा उठाया, वहाँ किसी की लकड़ी पड़ी उठा ली, वहाँ चारपाई के टूटे पाए मिले उठा लिए। होली है, माई ! होली है। मदनमोहन ने ब्रज के मदनमोहन ने भी वान बाट लिए थे। क्या धूम की हाली मचती थी वहाँ !

जमाएमी के उत्सव की तो कुछ बात ही निरानी थी। कन्हूपा के पालने की सजावट और ठाकुरजी की सजावट का सब भार मदनमोहन पर था। वही मालाएँ गूथी जा रही हैं, वहाँ छडिऐँ बनाई जा रही हैं। कहीं पानने की सजावट हो रही है तो कही भाड फासुस भाडे पोछे जा रहे हैं। वही गानेवालों का प्रबंध हो रहा है तो वही क्या का। एक नया जीवन, नई चहल पहल चारों ओर दिखाई पड़ने लगती थी। छठी के दिन तो और भी शोभा चौगुनी बढ जाती थी। चारों ओर मोम बत्तियाँ जगमगाने लगती, भाँगा और दालाना में गलीचे चौदनिया विद्य जाती। रातभर गाना बजाना क्या भजन कीर्तन होता, प्रसाद पजोरी पञ्चाभूत बाँटा जाता, उम समय की बात-बात में मनोलापन, काम काम में मस्ती थी। यही उमङ्ग तो बालका में काम करने की प्रेरणा, नया उत्साह और फुर्ती पैदा करता है और घागे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कर्मठ और फुर्तीले बालक बडे काम के निकलते हैं। इसीलिए आज के शिक्षाशास्त्री कार्य कुशलता और चेष्टाभुक्त त्रियागो के द्वारा शिक्षा देना अधिक आवश्यक समझते हैं।

यनोपवीत होने के पश्चात ये सध्यावन्दन और पूजा पाठ में भी बडा मन लगाते थे। इनका एक सध्यात्म भी था, जो सध्या का सामान लेकर नित्य यमुना किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा दत्त था, जो घूम घूमकर भाषण दिया करता था। बात यह थी कि उन दिनों प्रयाग में एक गिरिजा घर उनके मार्ग में पडता था। स्कूल से लौटते समय ये नित्य देखते कि कुछ पादरी खडे होकर हिन्दू धर्म की बुराई करते और भस्मेट गालियाँ देते रहते थे। ये भला ऐसा भत्याचार कब सटन करनेवाले थे। बस इन्होंने भी जहाँ भवसर मिला वहाँ सभा समाज, मेले उत्सव में खडे होकर व्याख्यान देना प्रारभ कर दिया। व्याख्यान सामग्री की इाके पास कोई कमी नहीं थी। अपने पूज्य पिताजी की क्याएँ इन्होंने सुनी ही थी, फिर क्या था, हिन्दू मस्कारा के बीच में पले हुए तेजस्वी ब्राह्मण को भात्मा भला हिन्दू धर्म की निंदा सुनकर चुप बैठ जाय, यह कसे हो सकता था। उन्होंने व्याख्यान-दल बनाया, जिसके सभी सस्य इसी प्रकार हिन्दू धर्म की विशेषताओं पर व्याख्यान देते रहते थे।

जहाँ कोई सेवा का काम पडता वहाँ मदनमोहन सबसे आगे दिगाई पडते। मेले-तमाशों में भीड़ का प्रबंध करना इन्होंने उसी बालकपन में सीख लिया। एक बार उनके पढोस में व्यासजी के घर भाग लग गई। देखते देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घडे पानी बुएँ से लौंच साए। उस समय भाग बुझाने की बल नहीं थी और नल का प्रबंध भी नहीं था। कुमा और पडा यही साधन थे। मदनमोहन के प्रयत्न से भाग बुझ गई।

सध्या-वन्दन में रुचि तो थी ही, एव बार इहें गायत्री मन्त्र जपने की धुन सवार हुई। ये धुपचाप घर से भाग जाते और जमुना किनारे बरगद घाट पर एवामन लगाकर गायत्री मन्त्र जपने। दाकी माताजी का बनी चिन्ता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि वहाँ लडका साधु सयासी न हो जाय। पर मदनमोहन जैसी प्रवृत्ति का बालक माधुषा के अभिमण्य, तीरम और व्यय जीवन की ओर घाँस उठाकर भी नहीं देत सकता था। उनको माताजी का यह विश्वास हो गया कि उनका भय ठीक नहीं था।

ये पढ़न में बहुत मत्त लगाता था पर गणित में अच्छे थे और संसार संसार के सभी मत्तानुसार गणित में अच्छे रहें हैं, पर परिश्रम करने इन्होंने अपनी मत्त सभी भी पुरी कर ली। इनका सोचना मत्त पर दस बारह प्राणियों के लिये छोटा ही था। पर पर पढ़ना की गुणिया नहीं थी। बाप-माता के घर में कोई चाहे कि बठकर मत्त लगाकर पढ़ ले, मत्त बीगे हा सक्ता है। कोई रो रता है, कोई चिन्ता रहा ह कोई गा रहा है—कोई रोता रता है—गब-घानी-घाना मत्त में है। फिर मत्त भला वहाँ पढ़ाई बीग हो। इनके घर के पाग ही छोड़ी दूर पर मोहानान की बगिया में इन्होंने एक साथी गन्नाप्रसाद रहते थे। वहाँ तीन चार घेर के पढ़ थे, एक कुर्सी था और एक अच्छी घण्टी थी। बस जहाँ भँभा हुई कि ये सालाना और पोथी लेकर वहाँ पहुँच जाते और पढ़ा करने थे। मत्त नहीं कहा जा सकता कि जितनी पढ़ाई होगी पाहिल की उतनी होगी या, पर हाँ, पर ये तो अधिक ही होती थी। भला जहाँ दो विद्यार्थी साथ पढ़ते हैं वहाँ साथी मत्त होती है और साथी पढ़ाई भर की देर थी, फिर तो कोई होनी ह। यही बात वहाँ भी थी। मदनमोहन का घरन में तो एक ही थे। इन्होंने कोई साथी मिलन भर की देर, कोई भी विषय प्रारम्भ हो के परमाणु मत्त या ही होता था। रात में वही पढ़ते थे और यहाँ सोने थे। प्रातःकाल उठकर पर चने खाता करता था।

पर हमने यह न समझा कि मदनमोहन बस पढ़ाने और पाथी के बीच थे। ये सब मत्तानुसार खिलानी और चञ्चल बातक थे। स्कूल से खात ही पोथी बहा-पैनी, जूते नहीं उतार-बाग-वर्तों वाले, वह गए, वह गए वह गए मदनमोहन घर से बाहर। सभी देगे ता गुन्नी उल्ला मत्त रहें हैं, तो किसी दिन बबनी हो रही ह। व्यायाम भी बटकर किया करते थे और नियम मत्त में मुग्ध-धुमाते या बहल लगाते थे। अपनी बूढावस्था में भी ये नियम व्यायाम करता रहें।

नेतृत्व की शक्ति भी जन्मजात होती ह। मदनमोहन का एक गुट था और ये उगरे मत्तानुसार थे। स्कूल से लौटत हुए प्रायः किसी-न-किसी दल में मूठभट्ट हो ही जाती थी। सभी-वर्गों तो मौखिक युद्ध तक ही बात रह जाती थी, पर यदि सभी बात बड़ जाती और हायागई की नीबन भा जाती सब भी ये पीछे नहीं हटते थे, बटकर लोहा सेत थे। ये एक ब्राह्मण नहीं थे जो मदन छोड़कर भाग खट ह।

होली के दिना में इनकी घणा दलत ही बनती थी। मनीना पहल से तयारियाँ हान रागती। पिचकारियों में गिट्टी बांधी जाने लगती, राहचलता पर कियर से रङ्ग छोडा जा सकता ह य सब बातें साथ ली जातीं स्वान ठीक कर लिए जाते और तालडिगी में होली के तीन चार दिन पहल से ही घुम्राधार पिचकारियों चने लगतीं, रङ्ग छोडा जाने लगता। पिचकारी भरे सब ताक म सडे रहते। वह लो, सामने से पण्डितजी पोथी पत्रा सभालते चले जा रहे ह—पिचच। पण्डितजी तर हो गए। वे बिगडे पड रहे हैं। 'नहा धोकर भाए थ, सब भ्रष्ट कर दिया। इधर ठहाका लगा भररर कबोर भले मानसो का उधर से निकल चलना दूबर था। जो इधर से निकले उसक दुगत ही समझो। बहुत से छेने ढाके का चुनटदार कुर्त्ता और चौगेशिया टोपी देकर ठाट घाट से सभलकर निकलते। इधर मदनमोहन और उनका दल पिचकारी साथे एसे तीसो की ताक भाग में लगा रहता। बस बात की बात में ऐसी पिचकारिया छूट चलती कि कोई रगरेज भी क्या खाकर इतने कौशल से रंगेगा? मजाल क्या कि कोई श्वेतवेपो बिना छोटा खाए वहाँ से, बिना रंगा निकल जाय।

होली की रात की पहल-पहल तो कुछ पूछिए मत। मदनमोहन की टोती चौकस होकर

नेकल पड़ती थीं। घुटना तक धोती चड़ाए, बही पेड काटे ला रहे हैं तो वहीं भत्कटमा काट बाट-
कर खीचे लिए चले आ रहे हैं। कहीं से किसी का टूटा मोटा पड़ा उठाया, वहीं किसी की लकड़ी
पड़ी उठा ली, वहाँ चारपाई के टूटे पाए मिले उठा लिए। होली है, भाई! होली है। मदनमोहन ने
शुभ के मदनमोहन के भी बान काट लिए थे। क्या धूम की होली मचती थी वहाँ!

जमाष्टमी के उत्सव की तो कुछ बात ही गिराली थी। कह्या के पालने की सजावट और
ठाकुरजी की सजावट का सब भार मदनमोहन पर था। वही मानाएँ गूथी जा रही है, वहाँ छडिँ
बनाई जा रही है। वहाँ पालने की सजावट हो रही है तो बड़ी भाड-फानूस भाडे पोंछे जा रहे हैं।
वहीं गानेवालों का प्रबन्ध हो रहा है तो वही क्या का। एक नया जीवन, नई चहल पहल चारों ओर
दिखाई पड़ने लगती थी। छठी के दिन तो और भी शोभा चौगुनी बढ़ जाती थी। चारों ओर मोम
बत्तियाँ जलमगाने लगतीं, भाँग और दालाना म गलीचे चाँदनिदा विद्य जाती। रातभर गाना बजाना
कथा मजन कीर्तन होता, प्रसाद पजोरी पञ्चामृत बाँटा जाता, उस समय की बान-यात में
मनोलापन, काम काम में मस्ती थी। यही उमङ्ग तो बालका में काम करने की प्रेरणा, नया उरसाह
और फुर्ती पदा करती है और भागे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कमठ और फुर्तिले बालक बड़े काम के
निष्कलते हैं। इनीलिये भाज के शिक्षाशास्त्री काम कुशनता और चेष्टायुक्त त्रियाग्री के द्वारा शिक्षा
देना अधिक आवश्यक समझते हैं।

गोपवीत होने के परचात ये सध्यावदन और पूजा पाठ में भी बड़ा मन लगाते थे। इनका
एक सध्यादल भी था, जो सध्या का सामान लेकर नित्य यमुना किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा
दन था, जो पूम घूमकर भाषण दिया करता था। यात यह थी कि उन दिनों प्रयाग में एक गिरिजा
पर उनके मार्ग में पड़ता था। स्कूल से लौटते समय ये नित्य देखते कि कुछ पादरी खड़े होकर हिंदू-
धर्म की बुराई करते और भस्मेटे गालियाँ देते रहते थे। ये भला ऐसा धरगाचार कब सहन करनेवाले
थे। बस इन्होंने भी जहाँ भवसर मिला वहाँ सभा समाज, मेले उत्सव में खड़े हाकर व्याख्यान देना
धारम कर दिया। व्याख्यान सामग्री की इनके पास कोई कमी नहीं थी। अपने पूज्य पिताजी की
क्याएँ इन्होंने सुनी ही थी, फिर क्या था, हिंदू सस्कारा के बीच में पले हुए तेजस्वी ग्राहण को
भासा भला हिंदू धर्म की निंदा सुनकर चुप बैठ जाय, यह बसे हो सकता था। उन्होंने व्याख्यान-दल
बनाया, जिसके सभी सन्ध्य इमो प्रचार हिंदू धर्म की विशेषताओं पर पारंगत देने रहते थे।

जहाँ कोई सेवा का काम पड़ता वहाँ मदनमोहन सबसे धागे तियाई पड़ते। मेले-समारोह में
भोड का प्रबन्ध करना इन्होंने उसी बालकपन में सीख लिया। एक बार उनके पड़ोस में व्यासजी के
घर भाग लग गई। देखते देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घंटे पानी कुएँ से
खींच साए। उस समय भाग बुझाने की बल नहीं थी और नल का प्रबन्ध भी नहीं था। कुम्हा और
पड़ा यही साधन थे। मदनमोहन के प्रयत्न से भाग बुझ गई।

सध्या-वन्दन में रुचि तो थी ही, एर बार इन्हें गायत्री मात्र जपने की धुन सवार हुई। ये
धुपचाप घर से भाग जाते और जमुना किनारे बरगद घाट पर एकांत लगाकर गायत्री मात्र जपते।
इनकी माताजी को बनी चिंता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि वहाँ सटका साधु स्यासी न हो जाय।
पर मदनमातृन जसो प्रवृत्ति का बालक माधुमा के प्रबन्ध, तीरत और व्यर्थ जीवन की ओर भाँव
उठाकर भी नहीं देस सकता था। उनकी माताजी का यह विरवाग हो गया कि उनका भय ठीक
गई था।

निक्कन पहनी थी। घुटना तक घोनी बढ़ाए, कहीं पेड़ काटे ला रहे हैं तो वहीं भटकटैया काट काट कर खींचे लिए चले आ रहे हैं। कहीं से किमी का टटा मोटा पटा उठाया, वहीं किसी की लकड़ी पट्टी उठा ली, वहीं चारपाई के टूटे पाए मिले उठा लिए। हीलौ है, भाई ! होली है। मदनमोहन ने ब्रह्म के मन्मोहन के भी वान काट लिए थे। क्या घूम को होली मचती थी वहाँ।

जमाष्टमी के उत्सव को तो कुछ बात ही निराली थी। कहैया के पालने की सजावट और ठाकुरजी की सजावट का सब नार मदनमोहन पर था। कहीं मालाएँ नूँधी जा रही है, वहीं छड़िएँ बनाई जा रहा है। कहीं पालने की सजावट हो रही है तो कहीं भाड फाूस भाड पोछे जा रहे हैं। वहीं गाँनेवालो का प्रबंध हो रहा है तो वही क्या का। एक नया जीवन, नई चहल पहल चारो घोर खिलाई पहने लगती थी। छठी के दिन तो घोर भी शोभा खीगुनी बढ जाती थी। चारो घोर भोग वस्त्रियाँ जगमगाने लगतीं, आँग घोर दालाना में गनीचे चादनिया बिद्य जाती। रातभर गाना बजाना क्या भजन वीतन होता, प्रमाण पजीरी पञ्चामृत बीटा जाता, उन समय की बात-बात में मनोदापन, काम-नाम में मस्तो थी। यही उमङ्ग ता बालक में काम करने की प्रेरणा, नया उत्साह और फुर्ती पैग करता है और आगे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कमठ और फुर्तिले बालक बड़े काम के निक्कते हैं। इसीलिये आज के शिक्षाशास्त्री वाय कुशलता और चेष्टायुक्त क्रियाश्रुत द्वारा शिक्षा देना अधिक् आवश्यक समझते हैं।

पयोपवीत होने के पश्चात ये सञ्चयानन्द और पूजा पाठ में भी बडा मन लगाते थे। इनका एक गञ्घ्यादल भी था, जो सञ्घा का सामान लेकर नित्य ममुना किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा दल था, जो घूम घूमकर भाषण लिया करता था। बात यह थी कि उन दिनों प्रयाग में एक गिरिजा पर उनके मार्ग में पडता था। स्कूल से लोटते समय ये नित्य देखते कि कुछ पादरी खड़े होकर हिन्दू धर्म की बुराई करते और भरपेट गालियाँ देते रहते थे। ये भला ऐसा प्रत्याचार कब राहन करनेवाले थे। बस इन्होंने भी जहाँ भवसर मिला वहाँ समा समाज, मेने उत्सन में खड़े होकर व्याख्यान देना प्रारभ कर दिया। व्याख्यान सामग्री की इनके पास कोई कमी नहीं थी। अपने पुज्य पिताजी की कथाएँ इन्होंने सुनी हो थीं, फिर क्या था, हिन्दू सस्कारा के बीच में पले हुए तेजस्वी ग्राहण को घामा भला हिन्दू धर्म की निंदा सुनकर चुप बंठ जाय, यह कैसे हो सकता था। उन्हान व्याख्यान-दल बनाया, जिसके सभी मन्स्य इसी प्रकार हिन्दू धर्म की विशेषताया पर व्याख्यान देते रहते थे।

जहाँ कोई सेवा का काम पडता वहाँ मदनमोहन सबसे आगे दिखाई पडते। मेले-समारो में भोड का प्रबंध करना इन्होंने उसी बालकपन में सीस लिया। एक बार उनके पडोस में व्यासजी के घर भाग नग गई। देखते देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घंटे पानी कुएँ से खींच साए। उस समय भाग बुझाने की बल नहीं थी और नल का प्रबंध भी नहीं था। बुझा और पडा गही साधन थे। मन्मोहन के प्रयत्न से भाग बुझ गई।

सञ्घयानन्द में खिच लो थी ही, एक बार इन्हें गायत्री मन्त्र जपने की घुन सवार हुई। ये पुपचाप पर से माग जाते और जमुना किनारे बरग घाट पर एकासन लगाकर गायत्री मन्त्र जपते। इनकी माताजी को कभी चिन्ता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि कहीं लडका साधु स्याती न हो जाय। पर मदनमोहन जैसी प्रवृत्ति का बालक गांधुधा के भक्तमन्त्र, गीरस और व्यथ जीवन की घोर घाल उठाकर भी नहीं देस सकता था। उनकी मानाजा का यह विश्वास हो गया कि उनका मन ठीक नहीं था।

एक पग आगे

विवाह

आज-कल की सुधारक मण्डली यदि सुन पावे कि किसी का विवाह छोटी अवस्था में ही हा गया तो वह धाये से बाहर हो जाय और भारत की दरिद्रता और पराधीनता के सब कारण वह उसी विवाह में हूँदने लगे पर भगवान् ने जिसे कृपा करके थोड़ी भी बुद्धि दी है वह यह अवश्य समझ सकेगा कि पहले भले ही बालकपन में विवाह हो जाते थे, पर घर का समय इतना कठोर होता था कि उसका परिणाम बुरा नहीं होने पाता था। आज-कल हम लोग पच्चीस वर्ष की अवस्था में विवाह कराने का उपदेश तो देते हैं, पर पच्चीस वर्ष तक अपने को तेजस्वी प्रद्वारी बनाये रखने के साधन और उससी शिक्षा की क्या व्यवस्था करते हैं। उल्टे हम लोगो ने सृष्टिज्ञा, सिनेमा, सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम नाच-गान ऐसी अनेक प्रवृत्तिया का जाल बिछा दिया है कि जो अपने पारंपरिक संस्कार के कारण शुद्धमना रहने का प्रयत्न करना चाहे वह भी नाद-मुग्ध मृग के समान जान में फँसकर अपना शरीर, संस्कार, मन और आत्मा सबको बलुपित कर बैठे। एन यह हुआ है कि विवाह भले ही देर में होन लगे है, पर विवाह के समय हमारे नौजवान मित्रों के चेहरा से जमानो हवा हा जाती है और अनेक रोग आ जाते हैं। मनस्तत्व के विद्वाना का कहना है कि मनुष्य की इच्छा-भूति में जब बाधा पड़ती है तब उसी प्रतिक्रिया वशी भयकर होती है और उसी के फलस्वरूप वह पागल होना, असामाजिक वाय करता, राग-अस्त होता या आत्महत्या कर बैठता है। किन्तु यदि उम इच्छा का उचित पारा म माड दिया जाय तो वह इच्छा लोक-व्यापककारी उदात्त वृत्ति का स्वरूप धारण कर लता है। इसी आधार पर हमारे बड़े लोग यानत्रा का विवाह विशोर और युवावस्था के सचिबाल में कर देते थे जिससे उनकी स्नेह पाता एक ही मार्ग पर मुड चले, इमर उपर फँसकर बिहून जाने से बच जाय।

मदनमोहन के विवाह की भा बड़ी किचिन कथा है। वे चौह-पाठ्य वर्ष के रहे होगे—सुन्दर इनहरे बचन थे—आमो मयें भी न भीगी थी। बानी-बाली चमकदार भाँवें थीं और मञ्जन के गमान घबल घना से ऐसा प्रतीत होता था माना बम धर उडने ही जाने हा। इनके धावा पहिडत मन्थरप्रमादजी मिर्जापुर के गयनमेण्ट हाई स्कूल में हेड पहिडत थे। वे साहित्य के घुरघर विद्वान, मृदुभायी और हँसमुख थे। मन्मोहन प्राय उनके पास आया जाता करते थे। एक बार मिर्जापुर में पहिडता की समा ही रही थी। आस पास के बहुत से पहिडत एकत्र हुए थे। किमो विषय पर शास्त्रार्थ हो रहा था। मन्मोहन भी उसी मभा में बैठे हुए थे। बहुत देर तक सुनते रहे फिर उनको भी कुछ बोलने की इच्छा हुई। जिसे जनता के बीच में बोलने का साहस खुन गया ही वह मना खुप बैस रह सकता है। मन्मोहन सटे हाकर बोलने लगे। कैमो भाया थी, मानो पून बरस रहे हा। किचना साधुवां हुआ। जिसने सना उसान बाउब मन्मोहन की पोठ ठोंकी। उसी मभा में मिर्जापुर के मानसोय ब्राह्मण पहिडत नन्दराम भी बैठे हुए थे। पहिडत नन्दराम जी की तीन

मदनमोहन को सङ्गीत से बड़ा प्रेम था। यह गिया ता इनका निष्पत्तीना (पारिवारिक कला) ही थी। पिताजी की बाँसुरी गुनी ही थी। मधुर स्वर बाँसुरी में ही मिला था। इनके परिवार में स्यात ही कोई ऐसा बालक हो जिसे सङ्गीत में रुचि न हो। इनका सितार बजाना गीगा और बहुत ही अच्छा सितार बजाने लगे। सङ्गीत प्रेमी हुए मनुष्य की उत्साह प्रवृत्तियाँ त्रिगुण भी ता नहीं होती। सब पूछिए तो सहानुभूति, समबदना और दूसरे की ब्यथा का अनुभव उत ही हो सकता है जिसने एक बार तन्त्री के कोमल कण्ठ स्वरा का ध्यान लिया हो। इसी मङ्गीत प्रेम का गाय ये अपने पिताजी से सूर के पद भी गाते सुनते थे। अतः, कविता की ओर इनकी रुचि बढ़ चला त्रिगुण फलस्वरूप इन्होंने सितार के साथ बजाने-गाने के लिए सूर मीरा तथा अन्य कविता का चुन चुन कर सुन्दर संग्रह संकलित कर लिया था।

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का न प्राप्त होकर व समाज तथा देश के विस्तृत घावाड़े में भा कूटे, जिसमें उन्होंने ऐसे अद्भुत कौशल दिखाए कि वह-वह अनाडिथ भी पछाड ला गए और कितने पुरानसरदार जो जान से इस नये जवान का लोहा मानने लगे। न उमड़ें, नया उत्साह और नई आशावादी की उँगली थामकर मदनमोहन ऊपर तब चला लगे और इनके ऊपर तक चढ़ते चले गए कि उन तक पहुँचने की बात ता दूर रही उनकी ऊँचाई की बलपना करना या आश्चर्य की बात थी। मदनमोहन का काव्य क्षेत्र अब बढ़ने लगा।



एक पग आगे

विवाह

आज-कल की सुधारक मण्डली यदि मुन पावे कि किसी का विवाह छोटी अवस्था में ही हो गया तो वह आपे से बाहर हो जाय और भारत की दरिद्रता और पराधीनता के सब कारण वह उसी विवाह में दूँढ़ने लगे पर भगवान ने जिसे कृपा करके थोड़ी भी बुद्धि दी है वह यह अवश्य समझ सकेगा कि पहले भले ही बालकपन में विवाह हो जाते थे, पर घर का समय इतना कठोर होता था कि उसका परिणाम बुरा नहीं होने पाता था। आज कल हम लोग पच्चीस वर्ष की अवस्था में विवाह कराने का उपदेश तो देते हैं, पर पच्चीस वर्ष तक अपने को तेजस्वी ब्रह्मचारी बनाये रखने के साधन और उसकी शिक्षा की क्या व्यवस्था करते हैं। उलटे हम लोगो ने सहशिक्षा, सिनेमा, सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम नाच गान ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ का जाल बिछा दिया है कि जो अपने पारंपरिक सस्वार के कारण शुद्धमना रहने का प्रयत्न करना चाहे वह भी नाद-मुग्ध मृग के समान जाल में फँसकर अपना शरीर, सस्वार, मन और आत्मा सबको बलुपित कर बैठे। फल यह हुआ है कि विवाह भले ही देर में होने लगे हो, पर विवाह के समय हमारे नौजवान मित्रों के चेहरों से अज्ञानी हवा हो जाती है और अनेक रोग घा जाते हैं। मनस्तत्त्व के विद्वानों का कहना है कि मनुष्य की इच्छा-पूर्ति में जब बाधा पड़ती है तब उसकी प्रतिक्रिया बड़ी भयंकर होती है और उसी के फलस्वरूप वह पागल होता, प्रसामाजिक कार्य करता, राग-प्रस्त होता या आत्महत्या कर बैठता है। किन्तु यदि उस इच्छा का उचित धारा में माड़ दिया जाय तो वह इच्छा लोक कल्याणकारी उदात्त वृत्ति का स्वरूप धारण कर लेता है। इसी आधार पर हमारे यहाँ लागू बालकों का विवाह किशोर और युवावस्था के सन्धिबाल में कर देते हैं जिससे उनकी स्नेह धारा एक ही माँग पर मुड़ चले, इधर उधर फँसकर विवृत होन से बच जाय।

मन्नमोहन का विवाह की भी बड़ी बिचित्र कथा है। वे चौदह पन्द्रह वर्ष के रहे होंगे—मुन्दर इन्होंने बदन के—अभी मत्तें भी न भींगी थी। बानी-काली चमकदार धौलें थी और खञ्जन के समान चपल घना से ऐसा प्रतीत होता था मानो बस धब उड़ने ही वाले हैं। इनके पांचा पण्डित गंगाधरप्रसादजी मिर्जापुर के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में हेड पण्डित थे। वे साहित्य के पुरपर विद्वान, मृदुभाषी और हेममुख थे। मदनमोहन प्रायः उनके पास आया जाता करते थे। एक बार मिर्जापुर में पण्डितों की सभा हो रही थी। आस पास के बहुत से पण्डित एकत्र हुए थे। किसी विषय पर शास्त्रार्थ हो रहा था। मन्नमोहन भी उसी सभा में बैठे हुए थे। बहुत देर तक मुनते रहे फिर उनकी भी कुछ बोलने की इच्छा हुई। जैसे जनता के बीच में बोलने का साहस खुल गया तो वह भला धुप बँस रह सकता है। मन्नमोहन धड़े होकर बोलने लगे। वैसे भाषा थी, मानो फूल बरस रहे हैं। किन्तु माधुवाद हुआ। जितने सुना उसीने बालक मदनमोहन की पीठ ठोंकी। उसी सभा में मिर्जापुर के मातृवीय ब्राह्मण पण्डित नन्दराम भी बैठे हुए थे। नन्दराम को भी जो लोग

पुत्रियों थीं। दो का विवाह हो चुका था। सबसे छोटी कुम्न (कुम्न) देखी रह गई थी। उन्होंने मदनमोहन को अपना जमाता बनाने का सङ्कल्प कर लिया। बागचीत निश्चय हो गई। इस बातचीत के दोन्तीन वष पीछे सन १८८१ ई० म मन्मोहन का विवाह हो गया। मन्मोहन के स्वसुर होने का सीमाय उन्होंने का मिला। मन्मोहन उस समय कौलेज में पढ़ रहे थे।

स्कूल और कौलेज

हमारा भाज का उत्तरप्रदेश उस समय उत्तर परिचमा प्रांत तथा भवध कहलाता था। तब तब प्रयाग विश्वविद्यालय सूनपात नही हुआ था। इस प्रांत की एण्ट्रेस परीक्षा का सम्बन्ध बलवत्ता विश्वविद्यालय से था। इलाहाबाद जिला स्कूल अपने स्थान से उठकर मलावा पर चला गया और गवनमेण्ट हाई स्कूल हो गया। दूर होने के कारण अब तो मन्मोहन को प्राय नित्य ही डेर होने लगी। सन् १८७६ ई० में अट्टारह वष की अवस्था में मन्मोहन न एण्ट्रेस परीक्षा उत्तीर्ण कर लो।

एण्ट्रेस परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मन्मोहन का विचार हुआ कि कौलेज में पढ़ा जाय, पर दरिद्रता मुह बाए सामने लड़ी थी। किन्तु ब्रजनायजी न साहस न सोया। मन्मोहन ने म्योर सेण्टल कौलेज में नाम लिखा लिया। उस समय म्योर सेण्टल कौलेज प्रयाग की पब्लिक लाइब्रेरी के उत्तर स्थित दरभङ्गा कसिल म लगता था। वह सरकारी कौलेज था और उसके प्रिंसिपल बडे प्रसिद्ध विद्वान् आ हरिसन थे।

कौलेज में पहुँचने पर मदनमोहन के गुखा का तो विकास हुआ ही साथ ही उनका काव्यचेत्र भी बढ चला। प्रिंसिपल हरिसन् पर इनके देशानुराग, पवित्र जीवन, धोरता और निर्भक्ता का बडा प्रभाव पडा और वे इन्हें बहुत मानने लगे।

प्रयाग म उन लिंगा एक काव्य-नाटक मण्डली थी जिसम नगर के प्राय सभी प्रमुख नागरिक सदस्य थे। स्वर्गीय सर मुन्तराल भी उन लिंगा इसके सदस्य थे। एक बार उस मण्डली ने शकुन्तला नाटक खेला। बडी भाड हुई। संस्कृत के परिबलो में एक वहावत प्रचलित है—

वाव्येषु नाटक रम्य तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोद्धस्तश्लोकनुष्ठयम् ॥

कि 'वायो में नाटक सबसे श्रेष्ठ है। नाटका में महाकवि कालिदास का अभिमान शकुन्तल (शकुन्तला) नाटक सबसे श्रेष्ठ है—इत्यादि। नाट्य सत्कार के सबधेष्ठ नाटक की प्रधान नायिका महाकवि कालिदास की सबधेष्ठ कृति शकुन्तला का अभिनय करना कोई हसी ठट्टा नही है पर काव्य नाटक मण्डलीवाला न वहाँ के नाच घर में शकुन्तला नाटक खेल ही जाता। घण्टी बजी परदा उठा। मनसूया और प्रिमम्बणा के साथ जल को गगरी हाथ में लिए हुए शकुन्तला भाई। वह हाव भाव बस देखने ही योग्य था। यदि स भ्रत तब शृङ्गार और करुणा की उस महानदी म तरकर जब दशकण्ठ बाहर निकल तो सबकी जिह्वा पर एक ही बात थी—'शकुन्तला का अभिनय अद्वितीय हुआ है। एसी मुन्तरता से वह अभिनय किया गया था कि सबकी कल्पना म कई दिन तक 'शकुन्तला' विराजमान रही। वह अभिनय किसने किया था—यह कोई पहली, कोई रहस्य की बात नही थी। सब लोग जानते थे—उहीं ब्रजनायजी के पुत्र मन्मोहन ने।

इसी प्रकार एक बार कौलेज में 'मर्चेंट ग्रीफ वनिस' नामक अगरेजी नाटक खला गया। जिसमें पोशिया की भूमिका मन्मोहन की मिली। उस नाटक के देखनेवालो का कहना है कि यदि कोई अंगरेजी महिला भी उस भूमिका का अभिनय करती तो सम्भवत इतनी सुन्दरता के साथ

न कर पाती। जिस समय उस पोशिया ने दया के गुणों का बखान करना धारम किया तो जान पड़ा कि आकाश से दया के प्रभूत को वर्षा हो रही है और सारा ससार उस प्रभूत को एक एक वृद्ध पाने के लिए तरस रहा है और पाकर तत्प ही रहा है। मदनमोहन उस समय कौलेज में पढ़ रहे थे।

मदनमोहन ने कौलेज में एब डिप्लोमेटिक सोसाइटी (बोधविवाद समिति) स्थापित कर रखी थी, जिसमें इनके मित्रगण प्रायिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषया पर वाद निवाद करने रहते थे। सभी लोगों में इनके समान लगन नहीं थी, पर ये बलपूर्वक सबको पकड़-पकड़कर खींचकर ले ही जाया करते थे।

मदनमोहन का कौलेज का वेश भी वही था जो धाज है। वही साफा, वही दुपट्टा, वही घब बन और वही सँकरी मोहड़ी का पाजामा या पोती। गरमी के दिना में सचली दुपट्टे से इन्हें बड़ा प्रेम था जो विशेषतः उर्हीं के लिए मँगवाया जाता था। हाथ में सदा पहाड़ो डण्डा रहता और पैरो में बनी चार्निशदार जोड़े, कमी नागर। इनके साफे कों कया भी कम मनोरञ्जक नहीं है। पहले तो ये साधारण इलाहाबादो चौपोशिया टोपी लगाते और धाज्जा पहनते थे। बिन्दु बनारस के महाराजा के कमचारी मिर्जापुर के मल्लई पहिड़त दुर्गाप्रसाद की सफेद पगड़ी इन्हें ऐसी जँची कि तभी से इन्होंने भी उसी प्रकार की पगड़ी बाँधनी प्रारम्भ कर दी। उनकी देखा देखी धम तो बहुत लोग उस मार्ग के पथिक बन गए हैं और बेसी पगड़ी बाँधने लगे हैं।

गुरु से भेंट

मदनमोहन को सर्वतोमुखी शक्ति ने उन्हें पाठप-पुस्तक और कौलेज की चादवीवारी में ही बंदो न रहने दिया। जिसका हृदय विशाल हो जाता है और जो घबना सङ्कुचित चैत्र छोड़कर सारे संसार से नासा जोड़ लेता है, जिसके मुख-दुख एक व्यक्ति के नहीं, वरन सारे समार के प्राणिया के मुख-दुख में झोत प्रोत हो जाते हैं, वह फिर कौलेज की छोटा-नी परिधि के भीतर बने बंधा रह सकता है। सोभाग्य से उन दिना म्योर सेण्टल कौलेज में महामहापाध्याय पहिड़त प्रादित्यराम भट्टाचायजी सङ्कृत के प्राध्यापक थे। मदनमोहन सङ्कृत तो पढ़े हुए थे ही, यहाँ धारम उन्हें पहिड़त प्रादित्यराम जी से पढ़ने का अवसर मिला। धारस का छूते ही व सोना बन गए। पहिड़ा माँ त्रयामजी धादश गुरु थे। उन्होंने अपने शिष्य मन्मोहन को नती भक्ति परत लिया। उन्होंने मदनमोहन को उत्साहित मन्मोहो के स्वरूप में धारस ही कोई मन्मोहन छिपा बटा है। उन्होंने मदनमोहन को उत्साहित करत धारम कर दिया और बोडे ही समय में गुरु शिष्य में इतना प्रथिक स्नेह बढ़ गया कि पहिड़त प्रादित्यराम भट्टाचाय केवन कौलेज के गुरु ही नहीं रह गए, वरन वे इनके वास्तविक पय प्रदरक गुरु बन गए और राच मान तो गह है कि महामना पहिड़त मन्मोहन मालराय व बनाने में पहिड़त प्रादित्यरामजी भट्टाचाय का कुछ कम हाथ नहीं था।

हिन्दू समाज में सेवा काय

सन् १८८० ई० में प्रयाग के महाराजो टाले के भवन में ही हिन्दू समाज की स्थापना हुई और वही उसकी वेष्ठें होने लगीं। मन्मोहन ही इस समाज के प्रयाग काय-पत्ता थे। जहाँ किंगो जात में कोई महत्वन पढता कि मदनमोहन भट्ट इस कौशन से उगे मुनकाने कि बन्धु-सौग दत्त रह जाते। मदनमोहन को इस कुशलता से कुछ लोग ईर्ष्यावश मन ही मन चिड़ते भी थे कि यह बल का घोबरा

अभी से बड़े बड़ों का बान काटन लगा है। इनके तत्परतापूर्ण कौशल को लोग 'छोटे मुद्द बड़ी बान' समझते थे पर ये भी अपने अभ्यास से विजय थे। क्या करते? विभोन्न विज्ञान प्रकार काम तो करता ही था। निभय होकर ये अपने माग पर चले जाते थे, किसी के बहाने गुनन पर कभी बान नहीं देते थे। इनकी व्यापक सफलता का कारण सम्भवतः यह भी एक रहा है। एलिडन अयापनाय जी तथा एलिडत विरयम्भरनायजी जैसे देश हितपी नताभा से मन्महाहन का सम्पर्क द्रष्टी दिना हुआ।

केन्द्रीय हिंदू समाज की स्थापना

'हिंदू समाज' में हिंदुआ को ऊपर उठान, अपने बल पर खड़ा होकर और अपने विरोधियों से डटकर लोहा लेने का पाठ 'याख्याना' और 'वा' विवादा द्वारा ही हाँ रहा था। इधर मन्महाहन न उसी के साथ सन १८८४ ई० में 'केन्द्रीय हिंदू समाज' नाम से प्रयाग में एक सभा स्थापित की, जिसका उत्सव ममुना-तट पर महाराजा बारास की भव्य कोठी में मदनमोहन के उद्योग से दशहरे पर इतनी धूम धाम से किया गया कि दूर दूर से उत्तरी भारत के बड़-बड़ विद्वान उसमें पधारे और हिंदू धर्म तथा समाज को सुसंरक्षित करने के अनेक उपायों पर गम्भारतापूर्वक विचार भी किया गया। तीन दिन तक होत वाला इस उत्सव भी चहल पहल किसी भी राजनीतिक महोत्सव से कम नहीं थी। इस अधिवेशन के अध्यक्ष बरान्नाधिपति वल्लभप्रवर और महावीरप्रसादजी चुन गए थे। एलिडन लक्ष्मीनारायण व्यास बंधु के प्रस्ताव से उहाँ सभापति का भाग्य ग्रहण किया। उसी उत्सव में विलासत से तत्काल लौटे हुए कालाकाँकरनरेश स्व० राजा रामपाल सिंह भी पधारे थे। बंधु बंधु में उठकर सभापति के काम में इस प्रकार बाधा देने और बोलने लगते कि मन्महाहन को बड़ा नसकता था। वे ही नहीं और भी बहुत से लोग उनके इस 'यवहार' से बड़ असन्तुष्ट थे पर राजा साहब का नाम बड़ा था और उन्हें रोकने का प्रयत्न करना सचमुच बड़ साहस का काम था। पर मदनमोहन इसे देर तक न सहन कर सके। जब कभी राजा साहब ऐसा करते तो वे खड होकर राजा साहब के कान में कुछ बड़कर टाक देते थे। राजा साहब सुन तो लत थे पर मुस्वराकर टान जाते थे।

उत्सव समाप्त होकर पर राजा साहब न अपने 'हिंदुस्तान' नामक पत्र में मध्य हिंदू-समाज के इस अधिवेशन की प्रशंसा तो बहुत की पर साथ ही यह भी लिखा कि—'उसमें दो एक लौंड एस डोट थे कि बड़-बड़े राजा रईसा और बाबूका (बकताभा) को 'याख्याना' देत समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।'।

मदनमोहन से राजा साहब बिना तो बहुत गए थे, पर उनका यह राय बहुत दिन न टिक सका क्योंकि राजा रामपाल सिंह बड़ गुणग्राही पुरुष थे। इसलिए इसक थोड़ा ही दिना पीछे मन्मोहन से राजा साहब भिने और उँह अपने पत्र 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन बना दिया।

सन १८९१ ई० तक प्रतिपत्र विधिमित रूप से 'केन्द्रीय हिंदू समाज' के महोत्सव होने रहे जिनमें लोक कल्याण और देशहित के अनेक विषयों पर बहुत कुछ बहस हुआ सुना और सोचा विचार गया।

लिटरेरी इन्स्टिट्यूट (साहित्य समाज की स्थापना)

इस हिंदू समाज के साथ साथ इन्होंने लिटरेरी इन्स्टिट्यूट (साहित्य समाज) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था साहित्यिक विषयों पर चर्चा करना, वाक्य और साहित्य के गुण दोषों पर बातचीत करना, अपना साहित्य भाण्डार भरने का प्रयत्न करना और जैसे बत बसे समाज में साहित्य का प्रचार करना जिससे लोग में अपने राष्ट्रिय साहित्य का भी ज्ञान हो, साथ ही दूसरे साहित्यों का भी ज्ञान होता चल।

बीलने का रोग

मदनमोहन को बीलने का रोग प्रारम्भ में ही था। यद्यपि उनकी जीभ बँधी की तरह नहीं चलती थी तथापि उसका प्रवाह पबल से उतरती हुई गद्गा की धारा से कम न था जो पवित्र और शुद्ध तो था पर इतना तीव्र भी था कि मदनमोहन के बड़े भाई लक्ष्मीनारायणजी को छड़ी लेकर इनकी जीभ पर पड़ना देना पड़ता था। प्रयाग के वैद्य शिवरामजी ने उनके इन ग्रन्थाम का प्रथम विश्रम पणन किया है—

परिहृत सरयूप्रसाद मेरी चिकित्सा में ये और मालवीयजी उनके यहाँ आया जाता करते थे। मालवीयजी भी रक्त पित्त की बीमारा में प्रसूत थे। परिहृत सरयूप्रसाद की सलाह से उहाँने भी मेरी चिकित्सा आरम्भ कर दी। मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मने बहुत दिनों तक मालवीयजी की दवा की थी मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही न होता था। मगर मदनमोहन का विरवान मेरे ऊपर पड़ता था। उनके घरवाले उनसे नाराज होते थे। कहते थे—'शिवराम की दवा मन करो। वे तुम्हारा बहुत सा धन खर्च करते हैं और तुमको ठगते हैं।' उनका मदनमोहन का उत्तर विचलित था। वे योग से घड़ी कहते थे कि—'मेरे ही कुपथ्य मे मरा राग नहीं छूट रहा है। शिवरामजी की चिकित्सा में और उनकी आश्रित्य में कोई कमी नहीं है।

'मगर घरवाले चिन्तित थे। उनकी चिन्ता भी आशरण न थी। वे मूम में भी मिलन से और मचित हाकर पृथक् थे कि क्या कारण है कि मदनमोहन अपनी दवा में इतने दिना में ही मार भरी तो आगे नहीं हुए। अतस्तथा में परिवर्तन का भी कोई चिह्न उनमें नहीं मिल रहा है। मैं भी परेशान था। मेरी स्था में रोग दूर करने की शक्ति जरूर थी मगर पर्यटन को पथ्य से रहने के लिए विश्रम करने की ताकत उसमें न थी। मैंने मालवीयजी के घरवाला से कहा कि इनकी बीलने की आश्रित्य बहुत बढ़ी है। जब तक यह आश्रित न छूटेगी तब तक मुझे से खून का जाना बन्द न होगा। मगर मदनमोहन को बीलने का मशा था। चेष्टा करने पर भी वे बीलना नहीं छोड़ सकते थे।

मदनमोहन के बड़े भाई परिहृत लक्ष्मीनारायणजी को मेरी सलाह जँब गई। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहन के गाय रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीयजी ने एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मित्रे। इस घटन पर मैं भी मदनमोहन के पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्ति की मालवीयजी से बातें होनी लगीं। प्रहरी पण्डित लक्ष्मीनारायणजी भी अपनी लिम्मे मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बात चीत का सीता प्रब पथ्य से रहन की सीमा का उल्लंघन कर रहा है तो उन्होंने इस तरह मदनमोहन का ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हें पथ्यापथ्य की कोई परवाह न थी। साधार होकर लक्ष्मीनारायणजी को कहना पड़ा—'बस भाई!' उस समय मदनमोहन को बहुत बुल लगा। वे झुंझना गए। वे यह कहते हुए वहाँ से चल दिए—'हमें ऐसी दवा की जरूरत नहीं।' मगर परिहृत लक्ष्मीनारायण पर उनकी इस झुंझनापट्ट का कुछ भी असर न पया। उन्होंने छोटी लेकर मदनमोहन के साथ रहना न छोड़ा।

बात के घनी

मदनमोहन अपनी बात के घनी थे। जो एक बार मन को जँब गई उसका चाहे जितना विरोध हा, या जितनी गालियाँ मित्रे, चाहे जो मूठ जाय, पर मदनमोहन टराने मग हो जाते नहीं थे। जिन शिनों के बीजे में पड़ रहे थे उन शिनों को रियन प्रयाग में घानेवाने थे। वे भारत के बने हितविवों म मगध जाते थे किन्तु मंगरेज लोग उन्हें बंदी हेय दृष्टि से देखते थे। जब मदनमोहन को पाठ हुआ

कि लौड रिपन आ रहे ह तो उहाने धूम घाम से उनके स्वागत का विराट आयोजन किया। त्रिसपन हरिमन यद्यपि बड़ राजन भगरेज थे किंतु लौड रिपन के स्वागत की बात वे भा नहीं गढ़ गये। पर मन्मोहन तो किसी से डरनेवाले पीछे, हटनवाले नहीं थे। इन्हान त्रिसपन का सूचना नहीं होने दी और राता रात स्वागत करन तथा जुलूम निवालयन को पूरी तयारी कर डाली। भगने त्रिन लौड रिपन भ्राण, बडे वाजे गाजे और धूम घाम के साथ लौड रिपन का शान्दार जुलूस निकाला, उनका स्वागत किया गया और मान पत्र भेंट किए गये। इनके विरोधी बेचारे भवाक होकर मुँह तावते रह गए करते भी क्या ? यह सभी जान गए थे कि इस सारी धूम घाम की तल में मन्मोहन का ही उद्योग छिपा हुआ था।

कौलेज जीवन

सन १८८३ ई० में उन्होंने म्यार सेण्ट्रल कौलेज से ही एफ० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। सन १८८३ ई० में व बी० ए० की परीक्षा देते भ्राण गे गए। कुछ ऐसा समय हुआ कि वे उम वय सफल न हो सके। बहुधा धी व्यक्ति के साथ यह कठिनाई रहती है कि वह यदि दूसरा की भनाई सोचने में लग जाता है तो उसे अपनी उत्तमि के लिये अन्याय नहीं मिलता। पर भगले वय सन् १८८४ ई० में मदनमोहन ने कलकत्ते से बी० ए० पास कर लिया और उसी के साथ स्वतन्त्र मन्मोहन का घर में तू तेल-लकड़ी की चिता बरन का आश्रय मिला। मदनमोहन की बड़ी इच्छा थी कि एम० ए० कर लें। एक त्रिन या ही हिंदू समाज का बचक में काशी के पण्डित प्रधुमङ्गल मिश्रजी के पिता से भेंट हुई और बात चीत म यही निरस्य हुआ कि सस्टन में एम० ए० परीक्षा दी जाय और उसके लिये सिद्धांत मुक्तावली पढी जाय। बम मदनमोहन उनक पास सप्ताह में तीन दिन पढन जान लगे। उनके पाम वे अपनी वशभूषा में नयी जाते थे वरन ठेठ विद्यार्थी के ढङ्ग से, घोती पर एक दुपट्टा बाडे। उस समय मन्मोहन लम्बी शिक्षा रहते थे। आजकल के कौलेज के नौजवाना के समान उहोन हिंदुत्व के चिह्न को बहा नहीं किया था वरन बड गौरव के साथ उहाने उसकी रखा और उसका निर्वाह किया।

गृन्स्थी का भार

घर की दशा पहले से ही ठीक नहीं थी। सब अधिव त्रिनो तक इहें भ्राणे पढने के लिए कहीं से पसा मिल सकता था। इसलिये न चाहते हुए भी इहें अपने विद्या मंदिर से विदा लेनी पडी। जो व्यक्ति ऊपर चला चला जा रहा हो और शिखर के अत्यंत समीप पहुँचकर उसे उतर जाने का आदेश मिले, उसे कितना दुःख होता होगा यह कहन की बात नहीं है। पर विवशता थी। पिताजी कहीं तक सहायता करते। उहोन इतना भी कर दिया, क्या कम था ? फिर सारे परिवार की मौल मदनमोहन पर लगी थी—पढ लिख गया है कुछ कमायगा। ऐसे समय में मदनमोहन ने यही उचित समझा कि पढना छोडकर कुछ काम करें और इहाने दो-तीन महीने एम० ए० कक्षा में पढकर भी कौलेज छोड देने में ही अपने परिवार का कल्याण समझा।

भनकड सिंह

कौलेज के त्रिन सचमुच इनके बड़ी मस्ती के दिन थे। न ऊपे का लेना न मापे का देना। जो जो में धाया निरिचन्त होकर किया, कनो किसी के भ्राणे भय से तिर नहीं भुजाया। बडे के भ्राणे विनय और श्रद्धा से अवश्य भुके, पर जो इनसे कन पडा उसके भ्राणे ताल ठाककर लडे भी हो गए। अपने कौलेज के त्रिनो में इहाने 'जिगन्मन नामक एक प्रहसन लिखा था जिसमें इहाने दो बबिताएँ

लिखी थी—एक में तो इन्होंने भक्कड सिंह के रूप में अपना चित्रण किया है और दूसरे में उस समय के पत्र लिखे विलासप्रिय जेण्टलमैनो की हसी उड़ाई है ।

अपने सम्बन्ध में वे कहते हैं—

गरे जूहीके हैं गजरे पडा रङ्गी दुपट्टा तन ।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाके से मंगाते हैं ॥
कभी हम वारनिश पहनें कभी पञ्जाब का जोडा ।
हमेशा पास डण्डा है ये भक्कड सिंह गाते हैं ॥
न ऊधो से हमें लेना, न माघो का हमें देना ।
करें पैदा जो, खाते हैं व दुखियो को सिखाते हैं ॥
नही डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तसिल्दारी ।
पडे धलमस्त रहते हैं यँही दिन को बिताने हैं ॥
न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नेक मुह फेरें ।
जो निल से हमसे मिलते हैं भुक् उनको देख जाते हैं ॥
नहीं रहती फिर हमको वि लावें तीर औरा लकडी ।
मिले तो हलवे धन जावें नही भूरी उडाते हैं ॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचडे से गृहस्थी के ।
छुटो फक्कडपना ले लो यही हम तो सिखाते हैं ॥
हमें मत भूलना यारो, बसे हम पास 'मनमोहन' ।
हुई ह देर जाते ह तुम्हारा शुभ मनाते ह ॥

इस चित्रण में उन्होंने अपने तत्कालीन वैश, निश्चिन्तता, मनस्विता, आत्म निभरता, सरकारी पदा से विरक्ति, अपने से कप्री काटने वालो के प्रति उपेक्षा, अपने से स्नेह करने वालो के प्रति विनयपूर्ण अनुराग, निर्लोभिता, निस्पृहता, गृहस्थी के प्रति विराग और लोक कल्याण की भावना का परिचय देकर अपना पूरा चरित्र दण्ड की भाँति स्पष्ट कर दिया है ।

यह तत्कालीन जेण्टलमैनो की दशा उनके शब्दों में मुनि है—

अहले मूरप पूरा जेण्टलमैन कहलाता है हम ।
डोण्ट से बाबू टु धी, मिस्टर कहा जाता है हम ॥
गङ्गा जाना पूजा जप तप छोडो ये पातएड सब ।
घूरने में मुह को गिरापर में नित जाता ह हम ॥
भाँग गाँबा चरस चण्डू पर में छिप छिप पीते थे ।
अप तो बेखटके हमेशा 'वाइल' बरकाता है हम ॥
हिन्दुभा का माना-नीना हमको कुछ भाता नहीं ।
बोक चमचे से बटे होटल में जा खाता है हम ॥
बाबू धी पाका का गहना लाइव हम करता नहीं ।
पापा कहना अपने बच्चा को भी सिगलाता है हम ॥
बीट पलनून पहने हट एक सिर पर धरे ।
ईविनिङ्ग में बाव करने पार्क में जाता ह हम ॥

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि थोड़ी सी अंगरेजी पढ़े हुए या अंगरेजी का अनुकरण करने वाले अपने-अपने भारतीय अपने-अपने को भारतीय कहलाने में सकोच करते थे, अपने को मिस्टर बहलाने में गौरव समझते थे, गंगा स्नान और पूजा पाठ को पावनगड समझते थे, महिलाओं को घूरने के लिए गिरजाघरों में जाते थे, खुलकर मदिरा पीते थे, होटलों में भी मास तक खाते थे, अपने बच्चों से अपने को 'पापा' कहलाना अधिक अच्छा समझते थे कोट, पतनून हट आदि से युक्त निर्देशी वेशभूषा में सायकल पाक में टहलने तो जाते थे किंतु मंदिर में नहीं जाते थे। यह कम दुर्भाग्य और विता की बात नहीं है कि आज स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी हमारी अंगरेजी प्रियता कम होने के बदले बढ रही है, हमारे बच्चे माता और पिता को ममी और पापा कहते हैं, डाग करते हैं, उन्हें तृतीय बच्चा से अंगरेजी पढाई जा रही है, उनके आचार विचार नष्ट हो गए हैं, अपने गुणों के प्रति उनके मन में शक नहीं है, देश के प्रति प्रेम नहीं है, उनका गान पान, रहन-सहन विकृत हो गया है। वे अत्यंत उद्दंड और निरकुश हो चले हैं, सिनेमा ने उन्हें चौपट कर डाला है। शोल और सदाचार का कहां नाम नहीं सुनाई पता। ऐसी विषम परिस्थिति में क्या पुनः मालवायजी की आवश्यकता नहीं है ?

इस प्रकार विद्या प्राप्त करके बड़े बड़े महापुरुषों का आशीर्वाद पाकर, सब गुणों से अलंकृत होकर, यह स्नातक विद्यामंदिर को नमस्कार करके सारे राष्ट्र, सम्पूर्ण जाति और विस्तृत समाज की सेवा करने की दीक्षा लेकर मदान में आ कूदा।



जीवन क्षेत्र में

अध्यापक मालवीयजी

जब मदनमोहन के परिवार की दरिद्रता उनकी पढ़ाई का द्वार रोककर खड़ी हो गई तो उन्हें अपने और अपने गुण पण्डित आदित्यरामजी के अनुरोध का बलिदान करके उस विवशता का लोहा मानना पड़ा और वे सुपुत्र के वक्तव्य का निर्वाह करने के लिए अपने पूज्य पिताजी और माताजी के बुझाप की लाठी बनने की चिन्ता में लग गए। मदनमोहन के गुण किसी से छिप नहीं थे। छोटे-बड़े सभी उन्हें जानते थे। इधर कौलेज छूटा, उधर गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में एक अध्यापक की माँग हुई। मदनमोहन बी० ए० अपने पुराने स्कूल में पचास रुपये महीने पर अध्यापक हो गए। अब इनके परिवार के िग फिरे। इन्होंने 'मल्लई' नाम का संस्कृत करके उसे 'मालवीय' बना दिया और मालवीयजी कहलाने लगे और पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए० के नाम से प्रसिद्ध हो गए। इनके मालवीय नाम का प्रचार इतना हुआ कि इनके परिवार और कुटुम्बवालों ने तो इस नाम को अपनाया ही, साथ ही श्री गौड़ चतुर्वेदी ब्राह्मण भी अपने को मालवीय लिखने लगे फिर तो यह राग ऐसा बढ़ा कि मालवा से तनिक भी सम्बन्ध रखने वाले लोग अपने नाम के पीछे मालवीय लगाने लगे। महापुरुषों के नाम में भी तो कुछ जानू होता ही है।

अब मालवीयजी स्वतः म पढ़ाने लगे। साग का ऐसा विश्वास है कि विद्यादान सब दानों से बढकर है और अध्यापन का समान कोई भला काम नहीं है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि अध्यापक में कुछ आवश्यक गुण भी हों, वे हैं सच्चरित्रता, मुदुमायिता और अपने विषय का पूरा ज्ञान। जिस अध्यापक में ये तीन गुण न हों वह अध्यापक कैसा? अध्यापक स्वयं विद्वान् होता है। उसे देखकर, उसके सम्पर्क में आकर ही यदि विद्यार्थी प्रभावित न हों, उसे अपना आदर्श न मानें तो फिर वह अध्यापक क्या हुआ! मालवीयजी इन तीनों बातों में पूर्ण थे। यादें ही जिनों में विद्यार्थी इनसे मिल गये इनके भक्त हो गए। जिन्होंने इनके चरणों में बैठकर पत्रा ह उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक सभी देशों में ही नहीं, सुनने में भी नहीं आया। उनकी अध्यापन कुशलता की एक स्मरणीय घटना है। एक बार वे घूमते घूमते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कर्मभ्यागीषस ट्रेनिंग कौलेज में आए। वहाँ पर शिक्षक-छात्र बड़े शिक्षण शालत पत्र रहे थे। उन्हें देखकर अध्यापक उन्हें प्रयाग का गवर्नमेण्ट हाई स्कूल स्मरण ही आया। उनके हृदय के भीतर बड़ा हुआ अध्यापक पुरानी स्मृति लेकर सहसा जाग उठा। उन्होंने तत्काल वहाँ काम करने वाले अध्यापक मित्रियों और कारीगरों को एकत्र किया और कहा देखो! हम सुभ्रं मिलना सिखाते हैं और उन्हें खोजी ही देश में इस कौशल से उन्हें समझा-समझाकर 'राम' लिखना बतवा दिया कि अध्यापकों का ज्ञान हुए बिना भी, अध्यापक ही और बतवा बिना सोचो भी वे लोग बिना परिश्रम के 'राम' लिखने लगे। उनका यह शिक्षण-कौशल देखकर ट्रेनिंग कौलेज के अध्यापक भी दंग रह गए।

अपने देश, वाणी और व्यवहार से वे सत्ता प्राप्त पुरुष रहे और जब कभी वे विद्यापिया को उपदेश देने बैठते थे, या कभी एकांशो कथा प्रारम्भ करते थे उस समय उनके कण्ठ से केवल कथाकार "यास ही नहीं बरन वास के अन्तरात्मा में बड़ा हुआ मन्थापन भी सयन भाव से बोलना सुना जाता था ।

उसी गवतमेण्ट हाई स्कूल में इनके चचेरे भाई पण्डित जयगोविन्द मानवीय भी संस्तुत पण्डित थे । वे कोरे नाम मात्र के पण्डित ही न थे, बरन व्याकरण वे बन् प्रौढ विद्वान् थे । मालवाय जी का और उनका बड़ा अच्छा साथ रहता । उस स्कूल में एक बात मानवीयजी को सत्ता बटवती थी और वह थी घम शिखा की अभावता । जी दुखन की सबसे बड़ी बात तो यह थी कि ईसाई और मुसलमानों के लडके तो अपने घमों, घम गुरुया घम व्र या तथा धार्मिक धाम्याना को बहुत कुछ जानते थे, पर हिन्दू विद्यार्थी अपने घम का क ख ग भी नहीं जानते थे और न जानन का चेष्टा ही करते थे । वे ऐसे निकम्मे और निर्जीव थे मानो उनके न हृदय ह न प्रात्मा । व घम का ढाग मात्र समझते थे और घम को बातें करनेवाले को ढागी समझत थे । हिन्दू बान्वा की यह नास्तिनन्त और उदासीनता मालवीयजी को बहुत अखरी । उह यह भी देखकर बड़ा दुख हुआ करता था कि हिन्दू बालक अपने घम पर, देवी देवताप्रा पर, आचार विचार और अपने समाज पर दूसरा के आक्षेप सुनकर भी अन्तमुत्ता कर देते या मौन रह जाते थे जैसे वे निस्मार हा, तत्त्वहीन हा । पर उस समय मालवीयजी कुछ न कर सके । इसका उह सदा ही खेद रहा ।

मालवीयजी की पगडो, दुपट्टे, और अंग के वश में पूरे पर के श्वत मौज और बन् गए । मालवीयजी के पढाने के ढङ्ग और सब छात्रा के प्रति इनके मधुर व्यवहार को देखकर दो वष में ही इनका वेतन पचहत्तर रुपये हो गया । इनके शिष्यों में प्रवाग के प्रसिद्ध नागरिक डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी भी रह चुके थे । स्कूल में मन्थापन करते समय की एक घटना कभी नहीं भूली जा सकती । एक बार छात्रा की परीक्षा हो रही थी । एक मुसलमान छात्र एक दूसरे विद्यार्थी की पुस्तिका से प्रतिलिपि कर रहा था । मालवीयजी न ताड लिया और तत्काल उसे कमर से बाहर निकाल दिया । यह लडका भी एक शतान था । बहन लगा कि कभी समझ लेंगे । पर मालवीय जी इस गीदड भभकी से डरनेवाले जोव नहीं थ । सब न बार बार मालवीयजी का समझाया कि इस दुष्ट के मुह न लगिए, न जाने क्या कर बडे । आप पत्तल न जाया करें इसके पर जायें । मालवीयजी ने उत्तर दिया कि हमारे क्या हाथ नहीं ह, हम पैदल हो जायेंगे । वे बराबर पदल हो जाते रहे । मालवीयजी को छेड़ने का तो उसे साहस न हुआ पर जिस लडके के उत्तर की वह प्रतिलिपि कर रहा था उसे उस दुष्ट ने पकड ही लिया और तिन भर बठाए रखवा । बेचारे को कुछ लोगों की सहायता से छुटकारा मिला । पर मालवीयजी व व्यक्तित्व का उस दुष्ट लडके पर इतना प्रभाव पडा कि बह्र भावर इनके परा पर गिरा और इनसे चमा मोंगी ।

भारता भवन

मालवीयजी कोरे मन्थापन नहीं थे । पढाने के अतिरिक्त जो कुछ समय मिलता उसे समाज सेवा और जन-सेवा में लगाते थे । वह समय भी कुछ दूसरा ही था । सरकारी नौकरी बरत हुए भी वे कांग्रेस में सम्मिलित हुए । सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हुई थी । मालवीयजी अपने निर्भीक गुरु पण्डित आन्विराम अट्टाचाय के साथ सन १८८६ ई० में होने वाली बलरत्ता कांग्रेस की बैठक में पहुँचे । यही स मालवीयजी की जीवन धारा बदल गई । जिस प्रकार इन्होंने स्कूल छोडा, सम्पानक बने और वकालत की, यह भी एक ऐतिहासिक घटना है ।

लालबिगो मुहल्ले में लाला गयाप्रसाद के पुत्र लाला ब्रजमोहन लाल हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। वचन में उन्हें हिन्दी पुस्तकों से प्रेम ही गया था, यहाँ तक कि कई भी हिन्दी पुस्तक उन्होंने जुटा ली थीं। स्वगवासी विद्वत् शिरामणि पण्डित जयगान्धि मानवीय और रामचन्द्रपुर लालबिहारी बी० ए० की प्रेरणा और सहायता से वही पुस्तकालय, जो पहले यक्षि का था, सवसाधारण का हो गया और १५ दिसम्बर, सन १८८६ ई० को भारती भवन पुस्तकालय की विधिवत स्थापना हो गई। प्रारम्भ में पण्डित जयगान्धि जी ने अपनी बहुत सी भ्रमरूप हस्तलिखित पुस्तकें भारती भवन को सौंप दीं। इस प्रकार बहुत से सज्जना ने अपनी-अपनी कुछ पुस्तकें दे दीं और वह एक छाटा सा सार्वजनिक पुस्तकालय बन गया—किर पण्डित जयगान्धि मानवीय, रायबहादुर बाबू लालबिहारी, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, मानवीय पण्डित मन्मोहन मालवीय, पण्डित श्रीकृष्ण जाशी, डाक्टर जयकृष्ण व्यास, बाबू कालिकाप्रसाद, पण्डित रामनाथ मिश्र और देवकीन दन तिवारी क संयोग से यह पुस्तकालय निरंतर उत्पत्ति करता गया। लाला ब्रजमोहनलाल जी की कोई सतान न थी। उनकी इच्छा था कि भारती भवन को अच्छे रूप में चलाया जाय और यह अजर अमर हो जाय। अन्तिम बीमारी को अवस्था में भी उनकी यही चिन्ता मनाए हुए थी कि इसे कस चिरस्थायी किया जाय। इसी कारण रोग की दशा में भी अपने परम मित्र बाबू लालबिहारीजी को भारती भवन का दान-पत्र लिखवाने तथा उसकी रजिस्ट्री करा देने के लिए उठने बैठने टोंका करते थे। अपने आराध्य से निराश होकर उन्होंने प्रयाग के रईस रायबहादुर लाला रामचन्द्रदास को बुलाकर स्वयं यह इच्छा प्रकट की कि तुम भारती भवन के लिए भवन बनाने का भार लो। सुयोग्य लाला रामचन्द्रदास ने जब इस भार को स्वीकार कर लिया तब उन्हें इतना आनन्द हुआ कि बिह्वल होकर गन लगे। जब उन्होंने बाबू लालबिहारी से सुन लिया कि भारती भवन का दान-पत्र लिया गया और अब उनके चिरस्थायी होने में किसी प्रकार का बाधा नहीं है तब उन्हें बड़ी शान्ति हुई। लाला ब्रजमोहनलालजी की जीवनी के अन्तिम अङ्क में यह बात भी सदा स्मरणीय रहेगी कि जब तक भारती भवन के नए स्थान की नींव नहीं पड़ी, वे बराबर इसके लिए व्यग्र रहे, किन्तु जैसे ही उन्होंने सुना कि रायबहादुर लाला रामचन्द्रदासजी ने नींव डाल दी तथा ही माना इनके जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया, व तुरन्त ही बेमुष हो गए और दूसरे दिन एकांशा को उहाँन शरीर छोड़ दिया।

लाला ब्रजमोहनलालजी ने अपने अन्तिम समय में जो दान पत्र भारती भवन के लिये लिखा उसने द्वारा भारती भवन का वाक्य जिन सज्जना का सौंपा गया उन में पण्डित मन्मोहन मालवीय, बी० ए०, एल. एल. बी०, वकील हाइकोट प्रयाग, भी थे। इस पुस्तकालय की उत्पत्ति करने और इसे स्थापित करने में मानवीयजी का कुछ कम हाथ न था। अब तो उस पुस्तकालय के कारण यह मुहल्ला भारती भवन बनाने लग है। मानवीयजी के उद्योग से इसे टिस्टिकट बोट और प्रान्तीय सरकार से भी सहायता मिलन लगे। भारती भवन का नाम मालवीयजी से ऐसा जुड़ गया है कि सब लोगो का विश्वास है कि भारती भवन पुस्तकालय मालवीयजी की ही व्यक्तिगत निधि है।

मेकडोवेल मुनिर्वर्सिटी हिन्दू शिडिंग हाउस

प्रयाग के प्योर सेण्टल कॉलेज ने ती विद्यापिया का आवर्षित किया ही था, यो ही दिनों परचात् सन् १८८७ ई० में जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय की नींव पड़ी तब तो और भी विद्यार्थी प्रयाग आने लगे। यह उत्तर प्रदेश का सबसे पहला विश्वविद्यालय था इसलिये चारों ओर से विद्यार्थियों का झुगड़ के झुगड़ प्रयाग आने लगे। पर छात्रावास पर्याप्त नहीं थे, इसलिये विद्यार्थियों को बड़ी

धनुविद्या होने लगी। 'य भी अधिक होता था और रहने खाने-पीने और पढ़ने में भी अड़चनें पड़ रही थी। मुसलमान और ईसाई विद्यार्थियों की संख्या भी कम न थी और उनसे रहन-सहन हिन्दुओं से भिन्न होने के कारण उन्हें धनुविद्याएँ भी उनकी न होती थी। हिन्दू विद्यार्थियों का यह पष्ट मालवीय जो से छिपा न रह सका क्योंकि दूसरे की व्याधा का अनुमान व महज ही लगा जात थे। उन्होंने अष्ट निरचय कर लिया कि हिन्दू विद्यार्थियों के रहने के लिये एता आश्रम छात्रालय बनाना आवश्यक है जिसमें प्रयाग जाने वाले हिन्दू विद्यार्थियों के आवास भोजन का पूरा सुवाग हो। कमठ पुरुष को ता विचार करने भर को देर होती है। गुप्त शक्तियों स्वयं उसका हाथ बटान को 'याकुल रहा करता है। मालवीयजी व सङ्कल्प का सारे प्रांत न जो खोलकर स्वागत किया। उस समय म्योर सेण्ट्रल कॉलेज ही प्रथम श्रेणी का महाविद्यालय था। सभी लोग अपने बालका को वहाँ भेजना चाहते थे और सभी के मन में छात्रालय का आभास उत्कृष्ट रहा था फिर जब इस उत्साह व पीछे तत्कालीन गवर्नर महोदय की प्रेरणा का संकेत भी मिल गया तब तो बहुत लोग ने अपना धनियाँ खोल दी। जिनके मन में दया, उदारता, कष्ट, परोपकार आदि सदभावों का सबका आभाव हाता है व आधिकारिकता व संकेत पर कस सबगुण सम्पन्न और उदार बन जाते हैं उसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है, यह नाम इस जागति और स्वतंत्रता के युग में भी कम नहीं हुआ है। उत्तरप्रदेश भर में घूम घूमकर उन्होंने अपना एक न किया। किस प्रकार उन्हें अपना मिला, उसकी एक ही घटना का विवरण देना पर्याप्त होगा। प्रयाग में जब हिन्दू छात्रावास बन रहा था, उस समय मालवीयजी रायब्राह्मण लाला मालवीय के पास गए। वे उस समय कार्यरत जा रहे थे। मालवीयजी ने उनसे कहा कि एक सहज रूप से दीर्घ सो आने के नाम से एक कमरा बन जाय। मालवीयजी की मधुर वाणी से व स्तन प्रभावित हुए कि बिना सोचे विचारे उन्होंने एक सहज का चक्र उठ दे दिया। पीछे से उन्होंने सोचा कि इस पर कुछ विचार करना चाहिए था और शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी किन्तु परिदृश्य की प्रभावशाली प्रार्थना से ही वे उनके मन में हो गए थे।

फलत सन १९०३ ई० में उत्तरप्रदेश के उत्तरचता गवर्नर सर एल्फोर्ड मकडोनल के नाम पर दो सौ पचास हिन्दू विद्यार्थियों के रहने योग्य एक विशाल भवन बन गया जिसका नाम पन्ना 'मकडोनल् युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिंग हाउस।' यह भवन प्रयाग के दशमीय भवनों में से एक है। मकडोनल साहब का जो यश फला वह तो फला है, बहुत दिना तक वह छात्रालय 'मालवीयजी का बोर्डिंग हाउस' कहलाता रहा।

मिण्टो पाक

पहले अध्याय में ही १ नवंबर १८९२ ई० का हुए लाड कनिंग के भाय दरवार का उल्लेख हो चुका है। उस दरवार का हुए ता पचास शत बोन बूके किन्तु महारानी विक्टोरिया की उत्तर घोषणा का पुनर्जीवित करने और उसकी स्मृति दिलान के लिये भारत ने कुछ भी न किया। सन १८९१ ई० में जब लीड मिण्टो यहाँ से बिना लेने लगे उस समय मालवीयजी के मन में आया कि जिस स्थान पर लाड कनिंग का दरवार हुआ था उसी स्थान पर एक घोषणा-स्तम्भ स्थापित किया जाय और उसके चारों ओर एक मुपर वाटिका लगाई जाय जिसके साथ लीड मिण्टो के नाम का सम्बंध हो। घर में सूत न कपास जुलाहे से सट्टम नट्टा। मालवीयजी ने अष्ट वाइसराय को यमुना-तट पर मिण्टो पाक के शिलान्यास के लिये निमन्त्रित कर दिया। लीड मिण्टो ने स्वीकार करके एक दिन भी नियत कर दिया। प्रसिद्ध देशभक्त श्रीगोपालकृष्ण गोवर्धनी को जब यह बात हुमा तो व बहुत चिंतित हुए क्योंकि वे जानते थे कि सभी एक-दूसरे एक नही हैं। उन दिना सुप्रोम कौंसिल को बठक हो रही थी और मालवीयजी

भी वहाँ थे। गोलखलेजी उनके पास गए और बोले, पण्डितजी ! यह भापने क्या कर डाला ? आपके चलने पैसा तो एक हूँ नहीं और आपने वाइसराय से पाक का शिलायास कराने की निधि भी पक्की कर ली। बहुत थोड़ा समय रह गया है, ठूपा करके कौन्सिल की बैठक छोड़ दीजिए और जा कर रुपया इकट्ठा कीजिए। यदि समय से रुपया न मिला और आपका भ्रमयश हुआ तो हम लोग का भी भ्रमयश होगा।' उन्होंने सचमुच बड़ी सात्त्विक उत्सुकता से कहा था। पर मालवीयजी मुस्कराए। उनकी मुस्कराहट जितनी देखी है वे तो भली प्रकार उसकी कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने गोलखलेजी से कहा, 'इस चिन्ता के नित्ये आपको घबराव है। चबराइए नहीं, सब रुपये यही बैठे आए जाते हैं। मुझे इसके लिये कहीं जाना नहीं होगा। मेरा पत्र ही रुपया ले आवेगा।' मालवीयजी सचमुच कहीं नहीं गए। उनकी चिट्ठियाँ ही एक लाख बत्तीस हजार आठ सौ सत्ताने रुपए ले आईं। गया मनुका के पवित्र गगन पर ६ नवम्बर मन् १८१० ई० की बड़ा भारी महोत्सव हुआ। वह समय कुछ टेढ़ा था। वाइसराय लोग अपनी जान हथेली पर लिए चलते थे। न जाने कब क्या हो जाय। इसीलिये लौड मिण्टो के आने के समय की सूचना नहीं दी गई और वे चुपचाप आए छिमे आपाठ का पहला बाल माना है—प्रधानक। चारों ओर बड़ा पहरा था। मिण्टो पाक के यात्र में आने जाने की बड़ी रोक टोक थी पर मालवीयजी ने सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया और सब के लिये द्वार खोल दिए। प्रातः काल ११ बजे सदलवन लौड मिण्टो और लेडो मिण्टो का आगमन हुआ। प्रयाग सेना ने दुर्ग की तोषा स उनका अभिनन्दन किया, गोल इण्डिया मिण्टो मेमोरियल कमिटी के महकारी मन्त्री पण्डित मातीलाल नहरू न स्वागत-पत्र पढ़ा, लौड मिण्टो ने उसका उत्तर दिया और उक्त पाक का शिलायास हो गया। एक ताँके के पात्र में धूम्रिय लौडर, पायोनियर तथा भ्रम पत्रा की प्रतिमा तथा उक्त घोषणा स्तम्भ का विवरण पत्र रखकर नीब में रच दिया गया। इसके पश्चात् वाइसराय अपने दलबल सहित प्रदक्षिणी और बेलकम क्लब देखने चले गए। आवाश भव तक तो निरभ था। घूष निक्की हुई थी। पर प्रधानक घटा धिर आई और बात की बात में घुमाधार बर्षा होने लगी जो वाइसराय के विदा होने तक होती रही। पैंतालीस मिनट भूमने के पश्चात् ये लोग प्रदक्षिणी के द्वार पर पहुँचे जहाँ मालवीयजी से कुछ देर तक बात करके और हाथ मिलाकर लौड मिण्टो ने बनारस के लिये प्रस्थान किया। भूमणम से उत्सव समाप्त हो गया। समय पर रुपये भी आ गए, मालवीयजी का भी भ्रमयश नहीं होने पाया और गोलखलेजी का भी मान रह गया।

जिन स्थान पर सारे होकर बड़े बड़े वीर आगे का माग नहीं रोज पाते उसी स्थान पर सारे होकर भाशा की एक बड़ी सूक्ष्म किरण के सहारे मानवीयजी आगे बढ़ते चले जाते थे। यही भाशा उनके घर-जीवन की कुञ्जी थी पर जैसे बहुत से ताँके, कुञ्जी मिल जान पर भा सब से नहीं घुल पाने उगी प्रकार जानपडता है कि इस कुञ्जी के प्रयोग करने का गुण केवल उहाँ का आता था।

पत्रकार मालवीयजी

सन १८८६ ई० की राष्ट्रीय महासभा ने मालवीयजी को सारे भारतवर्ष से परिचय करा दिया। राष्ट्रीय महासभा के मञ्च पर पहली बार खड़े होने ही उन्होंने सारे देश को अपनी ओर आकर्षित किया। मालवीयजी सभी को बताने लगे कि यही राष्ट्रीय महासभा मेरी सारी सफलता की पहली मोड़ी है। जिस मंत्र से उन्होंने सबके हृदय पर विजय पाई, सबके नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट किया और सबके प्रेम पात्र बने यह तो यथास्थान कहा जायगा पर इतना ही कहना बहुत होगा कि उस राष्ट्रीय महासभा में उपस्थित सभी नेताओं ने समझ लिया कि प्रयाग का यह ब्राह्मण साधारण व्यक्ति नहीं है। वहाँ बैठे हुए कई महापुरुषों ने प्रकट और अप्रकट यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि निकट भविष्य में सारा देश मिलकर अपनी रास इस महापुरुष के हाथ प्रवेश शीघ्र देगा।

कालाकाकर के स्वर्गीय राजा रामपाल सिंह उन्ही दिना विलायत से योरोपियन महिना से विदाह करके लौटे थे। उनके खान पान और रहन सहन के ढंग को देखकर कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था कि उनके विनायगी कोट के नीचे उदार हृदय, उनके अग्रजों टोप के नीचे विचारशील मस्तिष्क और उनकी मदिरा की प्याली में देशभक्ति का मद छिपा हुआ है। पर जब वे किसी सभा के सम्मेलन का आसन ग्रहण करने के लिये बुलाए जाते तो वे अपना विलायती ठाठ बल देते थे और चौमोशिया टोपी चढ़ाने और पाजामा पहनकर जाते थे। राष्ट्रीय महासभा के प्रभावशाली नेताओं में वे भी एक थे और वहाँ के मञ्च पर वे सिंह के समान दहाड़ते थे। पूर और पश्चिम दोनों राजा साहब में मिलाकर बसे हुए थे। राजा साहब मलमती गद्दा पर नीद लेनेवाले कोरे राजा साहब नहीं थे। उन्होंने विनायत तो देखा ही था पर हिन्दुस्तान की भी उ होने भली भाँति पहचान रखना था। टूटो हुई मड्या में किसान के परिवार की भूख और दोन कारीगर के प्राँसू उनसे छिपे न थे। साथ ही वे यह भी समझ गए थे कि अपनी बोलचाल की भाषा मातृभाषा को बिना ऊपर उठाए गीन भारत गूणा रह जायगा, वह अपनी यथा कह न पावेगा। इसलिये उन्होंने 'हिन्दुस्तान नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। वे उसे दैनिक बनाना चाहते थे पर उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति की खोज थी जो 'हिन्दुस्तान का समाल सके। कलकत्ते में होनेवाली दूसरी राष्ट्रीय महासभा के मञ्च पर मधुर किन्तु प्रभावशाली शब्दों की झूट धारा बहाता हुआ उन्हें एक ब्राह्मण दिखाई दिया जिसके तेजस्वी मुख स और घोल चिट्ठे कपड़ों से सजाई, निवरण, उत्साह और योग्यता का प्रकाश निरंतर बरस रहा था। सन १८८४ ई० के वैद्रीय हिन्दू समाज के उत्सव में 'घृष्टता करनेवाले जिस लौंडे से राजा रामपाल सिंह बैठकर चिढ़ गए थे उसे आज उन्होंने परख लिया। जिसे वह काँच का टुकड़ा समझे हुए थे वह हीरा निकला। जोहरी भला हाथ में धाया हीरा क्या छोड़ने लगा। राजा साहब ने मालवीयजी से कहा कि 'भारती साठ रुपये की अध्यापकी छोड़कर 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करो, देश की सेवा करो और वकालत छोड़ो। मैं आपकी दो सी रुपये मासिक दिया करूँगा।'

मालवीयजी दुविधा में पड़ गए। देश सेवा करने की धुन तो उन्हें थी सही पर उन्हें 'हिन्दू

स्तान' का सम्पादनकत्व ग्रहण करने से पहले बहुत सी बातें सावनी पड़ी। वे कट्टर ग्राह्यण थे, किसी का धुमा धन-जल नहीं ग्रहण करते थे। पूजा पाठ, नमः रामाय नमः पढ़ते थे। उधर राजा साहब का खान पान का कुछ विचार न था, सबके माथ वे सब कुछ खा पी सकते थे। मालवीयजी का पन्च पात्र और राजा साहब का प्याला दोनों एक साथ मला कैसे रह सकते थे। मालवीयजी बकालत वृत्ति को भी सीतेली माँ की झाला से देखते थे। बहुत कुछ सोच विचार करने के पश्चात् मालवीयजी ने यह प्रस्ताव रखवा कि 'म धरमरेजी और हिन्दू दैनिक 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन इस प्रतिबन्ध पर सकारता हूँ कि जिस समय आपने मदिरा पी हो उस समय न मुझ से बोने और न मुझे अपने पास बुलावें।' आज विद्वाने ऐसे निडर और आत्म प्रतिष्ठावाले सम्पादक होंगे जो अपने सहायक और पालक से इस प्रतिबन्ध पर सहमतता लेने का साहस करें। मालवीयजी दोन ब्राह्मण के पुत्र भले ही रहे हूँ पर उन्होंने आत्मा को बेचना नहीं सीखा था।

राजा साहब के लिये यह बड़ी कठोर तपस्या थी। पर वे मालवीयजी को बहुत मानते थे और उनका यही इच्छा था कि मालवीयजी जैसे योग्य पुरुष के लिए स्कूल कोई उचित स्थान नहीं ह। उन्होंने प्रस्ताव मान लिया और सन १८८७ ई० के जुलाई मास में, न चाहते हुए भी उन्होंने स्कूल से पद त्याग कर दिया और प्रयाग छोड़कर वहाँ से तीस मील दूर बालाबाँकर में रहकर हिन्दी के सवप्रथम दैनिक 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। जो स्कूल में तीस-बत्तीस छात्रों की विशाल जनता की अप्रत्यक्ष वृद्धा को पढ़ाने-सीखानेवाला सम्पादक बन गया।

मालवीयजी की लेखनी से मंत्रण 'हिन्दुस्तान' चमक उठा। शाहका की सस्था बरसाती समुद्र की सहाय की भाँति बढ़ती चली गई। मालवीयजी का अधिक समय भ्रम पत्र-सम्पादन में ही लगता था। सप्ताह में छह दिन वे बालाबाँकर में रहते थे, एक दिन प्रयाग में। रविवार को पत्र का साप्ताहिक संस्करण राजा साहब के ही सम्पादनकत्व में निकलता रहा। मालवीयजी क लेख बड़े मार्के के होते थे। सभी विषयों पर इनका सम्पादकीय लेख निकलते थे, सब में विशेष प्रभाव होता था, शक्ति होती थी और आकर्षण होता था। बन्धी-बन्धी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक समस्या पर गहरी खाँट भी कर जाते थे पर वह खोटे ऐसी होती थी जिसे पढ़कर चोट खानेवाला भी एक बार फटक उठता था और 'बाह-बाह' करने लगता था। ऐसे मूरमा बहुत बन लिखाई पढ़ते हूँ जिनके बार भी न चूबें और घायल एक बार तड़प कर उस मूरमा के कौशल की प्रशंसा भी करे। मालवीयजी इस ही अनुषर थे। 'हिन्दुस्तान' पढ़ने के लिये लोग विकल रहते थे। सबसे पहले हिन्दी में 'तद्वि समाचार' इसी पत्र में निकले थे। जनता और सरकार दोनों ने इस पत्र का स्वागत किया।

यहाँ पर मालवीयजी की एक विशेषता का उल्लेख करना असंगत न होगा। वे बड़े भयंकर घापा-शोषक प्रकृति-रिडर थे। एक बार लिखकर उसको कई बार काट छाँट पटा-बटाकर तो वे अपने पीनों को छपने भेजते ही थे पर यह जानकर कम धारक्य न हागा कि मशीन पर छपते छपते भी वे मैगका शुद्ध करते रहते थे। मालवीयजी के लेखका नाम सुनकर ही भ्रमस्त छापेमाने एक बार पबरा उठते थे। पहली बार जब छापा हुआ लेख उठाकर उनके पास भेजा जाता था, उस हम प्रकार रग देने के बिना उसे शुद्ध करना भी एक समस्या ही जाती थी। पर एक बात सभी एक स्वर से स्वीकार करते हूँ कि वे जो मशोधन करते थे उससे लेख निम्नला बला जाता था। उनसे सम्भव रखनेवाले जितनी पत्र-पत्रिकाएँ हैं और रही हूँ उनमें प्रायः वे छापा की अशुद्धियों को दस्तते और उन पर चिह्न लगा देते थे। उनका तर्क मे यह पादेश रहा है कि मध्ये पत्र के लिये छापा की अशुद्धियाँ होना बड़े बड़का की बात है।

अगई बरस तक मालवीयजी ने बड़े गौरव से हिन्दुस्तान का सम्मानरत्न किया और बड़ा नाम कमाया। मालवीयजी के साथ रहने का यह प्रभाव हुआ कि राजा साहब क बहुत स बुरे व्यसन उन्हें छोड़कर भाग गए। उनका नशा पानी भी बंद सा हो गया। पर क मनुष्य ही तो थे। व्यसन कोई ऐसी वस्तु तो ह नहीं कि बस कह दिया, छूट जाय। राजा साहब ने अगई बरस तक तो मालवीयजी के नियम को निबाहा, पर एक दिन एक एमो घटना हुई कि मालवीयजी न 'हिन्दुस्तान के सम्पादकत्व से और राजा साहब के सहवाम से नाता तोड़ लिया। एक दिन राजा साहब प्याग चढा चुके थे, उसी समय उ हान किसी आवश्यक सम्मति के लिए मालवीयजी को पुनत्रा भजा। बातचीत कर चुकने क पश्चात उन्होंने राजा साहब क कहा कि आज से मेरा अलग अलग आपने पास से उठ गया। आपन मुभम जा प्रतिबन्ध बाधा था, वह आज टूट गया। म आज हा रात का या कन प्रात काल बना जाऊगा। आप अपने पत्र का प्रबंध कर लीजिए। आपका उत्तरता और स्नेह का म कभी नही भूँगा। राजा साहब यह सुनकर गन रह गए। राजा साहब न बहुत गम भाया पर हिमाय तो अपने स्थान से टलता नही ह। मालवीयजी के बन् भाई भी समझाकर हार गए। अत में राजा साहब ने कहा अच्छा गधो बगानत पगे। जितन दिन प्याग सारा व्यय म हूँगा। मालवीयजी सन १८८८ ई० म हिन्दुस्तान छोड़कर चल आए। इतन अच्छे पत्र का त्याग कोई साधारण त्याग नही था। त्याग के हवन-कुण्ड में मालवीयजी की यह मवम पहना महत्वपूर्ण आहुति थी।

'हिन्दुस्तान से विदा लेकर जब मालवीय जी घर लौटे ता मुक्तप्रात (उत्तर प्रन्श) क सिंह पण्डित अयोध्यानाथ के अंग्रेजी पत्र इण्डियन आपनिशन (भारतीय मत) ने उनका स्वागत किया और ये उसके सम्पादन में पण्डित अयोध्यानाथजी का हाथ बँटाने रहे। पण्डित अयोध्यानाथजी जैसे दबङ्ग निडर और स्पष्ट वक्ता थे बसा ही उनका पत्र भा या। प्रयाग के लघुप्रतिष्ठ नागरिक पण्डित बलदेवराज दवे भी इनके साथ ही थे। और इन दोनों के सम्मिलित परिश्रम ने पत्र को अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। पाछे यह पत्र लखनऊ क एन्वोकेट से मिला। वह भा मालवीयजी के सहयोग स बन्चित न रहा।

अभ्युदय

साए हुए सागा को कुम्भकर्णी नौद स जगाने के लिए यदि सवने अच्छा और सीग कोई उपाय ह ता वह पत्र ह। इलाहाबाद के उद्दु के महाकवि अकबर ने एक बार कहा था —

खीची न कमाना का न तलवार निकालो।

जब तोप मुकाबिल हा तो अलवार निकालो॥

चाहे यह शेर अलवार की बन्ती हूइ बाट पर पबता ही क्या न हो पर इसकी सचाई में निनमर नी सन्नेह नही ह। उस समय जब कि मारी आध्य जाति अपना प्राचीन ससृति को पुराने वेडना में ढपटकर और अपनी प्राचान धारता तथा आत्म-सम्मान को म्यान में डानकर गहरो नौद ले रही थी, उस समय पत्र निकाने के निवाय और कोई ऐमा साधन नही रह गया था जिससे मरकार की बोधाभि स बचने हुए उनको जगाया सके। मालवीयजी यह बात भली भाँति समझ चुके थे। कौनेज में पन्ने के समय ही मालवीयजी उस दिन का सपना देखा करत थे जब गङ्गाजी के तीर पर प्रयाग स काशी तक एम आश्रम बनें जिनमें लाग समय-पूर्वक रहकर अपना पान बन्ध, विद्याय बने जिसमें सब विद्याएँ सारे विज्ञान, यज्ञ-शास्त्र और शिष्य शास्त्र विलायन के

समान पढ़ाए जायें और भारताय विद्याभिया का किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त बनन क लिए भा विनायन न जाना पड़ । मालवायजी क साथी उस समय उनकी हँसो उजात थ कि 'मदनमाहन पागन हा गया ह ।' उस समय क मदनमाहन के विचारा को सुनने बाने मज्जना का मह बनन सचमुच आरचम हाता ह कि मालवायजी क सपने के सत्य हा जाने पर भी उयो विश्वविद्यालय में आज भी विद्यापती डिग्री की ना अगिन पूष हा रही ह । यह सृष्टि कम उलट गई, मह सचमुच अचम्भे को बान है । हाँ, ता हिन्दूविश्वविद्यालय की भावना मन और हृदय से निरन्तर बाहर आ चुकी यो और मन् १६०५ ई० की अगिन भारतीय राष्ट्रीय मन्त्रसभा के अधमर पर काशी में महा राज बनारस के सभापतित्व में मिथ्या हाउस में हाने वाली सभा में वह प्रत्यक्ष स्वल्प धारण करके रगो हो गई । उसको जीवित रखने के लिए यही साबा गया कि कोई एमा पत्र निकाना जाय जो हिन्दू विश्वविद्यालय की बधा निरन्तर छेड़ता रहे जिससे लोग पुराने अस्यास के अनुसार 'म एन वान से सुनकर दूसरे के निरालने न पावें ।

अवानक मन १६०७ ई० का वसत अपने माध-साथ भार का 'अम्युदय' भी लाया । वसन्त पन्वमी के शुभ दिन पर 'अम्युदय' का जन्म हुआ । प्रसिद्ध विद्वान और लेखक पण्डित बालकृष्ण भट्टा जा ने ही उसका नामकरण किया । उत्पन्न हाते ही वह बानक अम्युदय मानवीयजी का सौंप लिया गया । उसक बचपन म दा बरम तब मालवायजी ने उस पाला, पोसा और बालना मिमाया । दूध क दाँत गिरने स पहले हा इम बानक न धूम मचा दी । उस धूम का अर्थ ता यही था कि गङ्गा क तट पर जा मग्गनी मन्त्रि बाबाने की क बपता कर रहे थे वह बन्सना अदृष्ट जगत में आ जाय । पर वह ममाचार-अध, देश और समाज बाना की ना खोलने का काम भी 'अम्युदय' ने अपने गिर ता लिया । अम्युदय हा तो ठहरा । पर यह खलक बना बहुब्यया निराला । थाडे हा दिना म दसा अपन पालका की धैरियाँ रिकन कर दा । मानवीयजी दा बरम परवात प्रान्ताय हीसिल के सन्स्य हा गण और 'अम्युदय' श्रीपुरपोतमदास टण्डनजा क हाया में सौंप लिया गया । व ता भती भाँति नहीं सँभान पाए किन्तु पण्डित सचानन्द जाशाना न इम गैभाला आर सन १८१० ई० स सुप्रसिद्ध लखण पण्डित कृष्णबारात मानवीयजी ने इमका बागडार अपने हाथ में ता । बीच-बाच में पण्डित कृष्णबालन मानवायजी क रवान पर स्वर्णिय श्रीगणेशशङ्कर निवार्यी और प्रसिद्ध लखण पण्डित बहूटेरानारायण तिवारी का महपाय भी म प्राप्त हुआ ह । आजवन पण्डित कृष्णबारात मानवाय क सुपय पण्डित पथबारात मानवीय क ममाचारत्व में यह पत्र निरान रहा ह । आरम्भ में 'अम्युदय' सप्ताह में एन ही बार बसन दता रहा, किन्तु फिर मन १६१५ ई० स यह दनिक र्हा गया और फिर कभी अद्ध सप्ताहिक अभा साप्ताहिक शानर बराबर निरानता आ रहा ह ।

'अम्युदय' ने कभा बिना क बाग गिर नहीं नुवाया और साडर हावर सच बान बनन में कभा मकाच नहीं किया । इमो कारण 'अम्युदय' मग्गार का आँसा में बडा सटका और कई बार इमको 'लखण (जमानत) बन प', 'पद बार लखण अपहृत भी हुए और 'अम्युदय' महीना पर म ब'द होकर पन्ग रहा । इम पत्र का नाँति उसके नाम में ही छिरो हुई ह । उसका नीति ह 'अम्युदय' । किम प्रकार हा धन धम, श, समाज, जाति, माहित्य और ताक का अम्युदय करे ।

'साडर'

मोड कजात भारतवासिया का स्मृति म बहुत दिना तर जावित रहने । उन्हान सन् १६०५ ई० में बन्नात क लेग ना मुकट कर लिए कि उसय बचल बगान हा नहा, माग हिन्दुस्तान काँप उठा

और उस कम्पन ने एक बार अंगरेजी राज्य की जड़ भी बड़े भयंकर से भङ्गभोर दी। माना हुआ सिंह जब जागकर गरज उठता है तो उससे एक बार तो मारा जंगल दहन हुआ उठता है। लीड कज्जल ने सार भारत का क्षुब्ध कर लिया। उस ठोकर से हिन्दुस्तान के हृदय में चिर बान से निशाम करनेवाले आत्म-सम्मान को भी ठेस लगी और इसीलिए वह ज्वालामुखी के गमान भयंकर उठा। धूल भी ठोकर भारने से सिर पर चढ़ जाती है जिस पर हम तो मनुष्य थे समझ सरत थे।

ऐसी दशा में एक दैनिक अंगरेजी पत्र की आवश्यकता पड़ी। मालवायजा के परम उद्योग ने २४ अक्टूबर सन १९०६ ई० को विजयाशमी के दिन प्रयाग से सवरा नमस्कार करने के लिए 'लीडर' निकला। लीडर में नई मशीन लगाने के समय स्वयं मालवायजी ने उसका इतिहास इस प्रकार बताया था —

'लीडर' के स्थापित होने के पूर्व एक दैनिक समाचार-पत्र का दूनाहास्य में बड़ा आवश्यकता जान पड़ता थी। सन १९०६ ई० में स्वर्गीय पण्डित अयायानायजी ने 'इण्डियन ट्रायल' निकाला और उस पर बड़ा धन भी खर्च किया। वह पत्र तान वप तक चला और अभाग्यवश उसमें परधान बन्द हो गया। लीडर के स्थापित होने का एक कारण यह भी था। मन वकालत छाड़ने का निश्चय कर लिया था और उस समय मरा यह विचार था कि सावर्जनिक कार्यों से भाग्यलग हो जाऊँ जिससे हिन्दू विश्वविद्यालय का कार्य ठीक प्रकार से कर सकूँ। उस समय मरा मन में आया कि यदि मैं बिना एक पत्र स्थापित किए सावर्जनिक जीवन से अलग होता हूँ तो तब मैं अपने प्रान्त के प्रति अपना धर्म नहीं निवाहता हूँ। मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवाच्य जान पड़ा कि मैंने विचार किया कि सावर्जनिक जीवन से अलग होने से पहले एक पत्र प्रवर्धन यहाँ स्थापित हो जाना चाहिए। मैं इस पर कुछ मित्रों से बातचीत की और उन्होंने प्रसन्नता से उसके लिए धन दे दिया। आरम्भ में इसके लिए चाँतीस हजार रुपये जुटाए। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलाने के लिये बहुत कम था। किन्तु मुझे अपने उन मित्रों पर विश्वास था जिन्होंने सहायता करने को वह दिया था और वह आशा सफल भी हुई। 'लीडर' ने निस्वार्थ भाव से देश की आरंभ प्रान्त की वृत्त लगे से सेवा का है। इसकी नाति से बहुत लोग का सदा मतभेद रहा है और ऐसा रहगा किन्तु उसके कारण उसकी सेवा में कोई संदेह नहीं कर सकता। शायद ही कोई ऐसा पत्र हो जा सके प्रश्ना पर अपने मित्रों के विचार प्रकट कर सके। था चिन्तामणि और पण्डित कृष्णाराम महता दाना लीडर के प्राण है और दाना ने वाटकर उसे चलाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। लीडर के बन्त हुए प्रभाव का और उसकी सवाओं को सारे प्रान्त में स्वीकार किया है। आपकी स्मरण होगा जब असहयोग आन्दोलन का आरम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मातीलाल नहट ने इटिपण्डेण्ट पत्र चलाया जिसमें वे अपने विचार और लीडर से मतभेद रखनेवाले विचार फना सके। उस पर दो लाख पचास हजार रुपये खर्च किया गया, जिसमें से एक लाख रुपया स्वयं पण्डित मातीलाल ने दिया और पचास हजार श्री जयकर ने दिया था। सरकारी अधिकारियों ने भी यह बात स्वीकार की है कि 'लीडर' सावर्जनिक प्रश्नों का आयाचन दृष्टि से विचार करता है।'

था नरदनाय गुप्त और श्री सी० बार्दे० चिन्तामणि उसके सम्पादक मण्डल में नियुक्त हुए। एक घुर पूर्व के बङ्गाली थे ता दूसरे घुर लखिण के मद्रासी थे। जब 'लीडर' स्थापित हुआ था तब कुछ सागा ने भविष्यवाणी की थी कि यह असमय का रागिना है कोई सुनगा नहीं। पत्र शीघ्र ही बन्द हो जायगा। कोई लाग कहत था कि इसके सम्पादक और अधिकारी शीघ्र ही किसी विपत्ति में पसेंग। उस समय के प्रयाग के कमिश्नर और पायानियर पत्र में बोलिया कसा कि 'लीडर' इतना सज्जन और भला है कि अधिकारिता तक नही उठेगा। किन्तु इन पिछले बयों ने उन सारे भविष्यवाणियों

का भूटा सिद्ध कर दिया। इसकी सारी सफलता का श्रेय इसवे ज मन्ता और युवकों में उस्ताह का सञ्चार करनेवाले पूज्य पण्डित मदनमोहन मानवीयजी को है। लीडर के इतिहास की एक सम्पादिका प्रिदा भरी बहानी है। उनका जन्म बाल के उदय के भीतर ही उसकी पूजा समाप्त होने का प्रा गई। यहा तक की जन्म बद्ध में वेदन पाच महस्य रूपया शेष रह गया था तब भी सचालका की सम्मति स साहस करके लीडर का प्रक निवाया जा रहा था। किन्तु ऐसी दशा कर तक चल सकता थी। निदान उसका कारवाण समेटनेके लिये एक दिन भी निश्चय किर दिया गया। किन्तु इस धार निराशा में भी एक प्रकाश दीप पण्डित मदनमोहन मालवीय य जा इस समय अपने प्राणा से प्रिय महान हिन्दू विरवविद्यालय का धन लेकर देश म धूम धूम कर धन धटोर रहे थे। जब उनसे लीडर की इस दशा का वगन किया गया तो उनके मार म आत्म विश्वास स भर शब्द निकले— "दि लाडर रिज नोट डाई" ('लीडर नहीं मर सकता।) उनकी उस आशा के प्रकाश ने निराशा के अन्धकार म उजाला कर दिया और तब से 'लाडर' मदा के लिय बंद होने के बदले दिन-दूनी रात चौगुनी जन्मति करता गया। मन् १९२६ ई० में उनके अपने नये भवन बने और मन् १९२६ ई० में उसके लिये नई छाप का कले विदेश से मंगाई गई और उनके साथ एक हिन्दी का साप्ताहिक 'भारत' (अब दैनिक भारत) भी प्रकाशित होने लगा।

पण्डित मातिलाल नेहरू 'यज पपर्म लिमिटेड' के अतगत 'लीडर' के प्रथम अन्धक हुए। इसका पश्चात पूज्य मानवीयजी दस वर्ष तक उसके अन्धक रह। उनका पश्चात सर तजजतादुर मप्रू श्री सच्चिदानन्द सिनहा, श्री ब्रजनारायण गुप्त और मुंशी ईश्वरशरण ब्रम स इसका अन्धक चुने गये और इसके सहायक तथा काय्यकर्ता रहे। इसके अन्ध उस्ताही प्रारम्भिक सहायका में पण्डित बन्देव राम दब और डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी प्रमूत थे। बनर्जी का अस्वामयिक मृय स दश और प्रमाण नगर की अन्धक उदार और उस्ताहा ममाज सेवन से बचित होना पडा। इसने पश्चात सङ्कट-काल में लीडर का हाथ बटाने जाने वाली के थाराजा मानोचण और वातू गाविन्ददास भी थे। मर तज के मरकारो भी मेम्बर नियुक्त होने पर काशा व रायबृण्णजा अपरमन बन गए।

आरम्भ में इनके सम्पादन था सो० वाई० चिन्तामणि का अट्टारह अट्टारह पहे और कभी कभी बीस-बास पहे तक काम करना पडता था, उस समय के ही उसका कर्ता पता थे, व हा सम्पादन उप-सम्पाक मन्त्री, मनजर, मुद्रक, प्रकाशक सभी कुछ थे। लीडर उनके जीवन का एक अन्धक हा गया और यह प्रसिद्धि हा गया कि 'लीडर चिन्तामणि ह और चिन्तामणि लाडर ह।' था चिन्तामणि का प्राण लाडर या और लीडर व प्राण भी चिन्तामणि थे। मन् १९४० म सर मा० वाई० चिन्तामणि की मृत्यु हुई और श्री कृष्णाराम महता ने भार अपने ऊपर ले लिया। इनके आरम्भिक जीवा म ही इनका दा-तीन लता पर सरकार की यज्ञपि पडा। पर उनका निद्राह की भावना का लेश भी न था इनलिये सरकार का वह लक्ष्य निरथक गया। इनके दस वर्ष पश्चात फिर एक चनावनी मिला। श्री गणेश न इसमें प्राग आकर सर बिलिमय अडरवर्न की लिता, जिन्हा न तत्कालीन भारत सरकार का मन्त्रा लीडर क्य और श्री मोन्टेय्यू से मिलकर सब प्रकार का आरवागन प्राप्त किया और विपनि टल गई।

लीडर का नीति मन्त्र एक-नी रही। इनका समय पण्डित पर विभा न भावजनिक नेता या सस्था का कदोने कडो भातापना करन में सनाच नहीं किया। इनके सस्थापक पण्डित मन्मोहन मालवीय स लताकर इनके अन्धक पण्डित मातापत नेहरू, समयक था गोगने यही तक कि महात्मा

गांधी भी इसकी आलोचना से नहीं बच पाए। बहुत से लोग इसके सम्पादन से इंग्लिश विडन थे कि वे ऐसी बातें क्या करते हैं। किन्तु सम्पादन को अपना दायित्व समझकर किंगो व वरुणन का सकोच करके अपने विवेक की हत्या नहीं करना चाहिए। इस बात का कौन नहीं स्वीकार करेगा कि किंगो के सम्पादन तथा चिन्तामणि उन इन गिन लागे में य जा समय का गत का बहुत हा भलो प्रकार समझते थे और जो चलते फिरते विरवकोश मान जान थे।

‘मर्यादा’

लाडर की स्थापना के एक वर्ष पछ ही मालवीयजा न मर्यादा नामक मासिक पत्रिका निकलवाने का प्रबंध किया। अगरेजी पत्र लिखा जनता के लिये ता ‘लाडर पयाप्त था पर हिन्दी समझ वाले लोगो को भी ता बुद्धि का भोजन मिलना चाहिए था। मर्यादा में बहुत दिना तक राजनीतिक समस्याओं पर योग्यतापूर्ण निबंध लिखे गए।

हिन्दुस्तान टाइम्स’

पहल कुछ सिकल सज्जना ने दिल्ली से ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ नामक अगरेजी पत्र निवाला था पर उसकी व्यवस्था ठीक नहीं थी और उसका प्रचार भी कम था। मालवीयजा ने सन १९२४ ई० में वह पत्र अपने हाथ में ले लिया और उसका सुव्यवस्था कर दी। श्री पायान जोसफ उसके सम्पादन हुए और उन्होंने बड़ी योग्यता से अपना काम निवाहा। उसके पश्चात् महात्मा गांधी के मुपुत्र तथा देवदास गांधी इसके व्यवस्थापक हुए थे और हिन्दुस्तान नामक एक हिन्दी पत्र भी इमो के साथ निकलने लगा था। यह दिल्ली का अगरेजी दैनिक ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ भी मालवीयजा का प्रेरणा से पत्र-फूला और थाड हा दिना में इस महापुरुष के आशीर्वाद ने उसे वह पत्र दिला दिया जिस पर आज उसे अभिमान है।

सनातन धर्म

२० जुलाई सन १९३३ ई० का गुरुपूणिमा के अवसर पर साप्ताहिक ‘सनातनधर्म’ नामक पत्र पुण्यश्लोक मानवायजी का सार्वभौमिकता का साक्षात्कार विश्वविद्यालय का स्व० पण्डित गणेशदत्त आचार्यजी के प्रबंध में निकला जा सन १९४७ तक सनातनधर्म का निरन्तर प्रचार करता रहा। उनमें धार्मिक विषयों के अतिरिक्त विज्ञान कला-कौशल इतिहास अर्थशास्त्र समाज साहित्य इत्यादि सभी विषयों पर महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते रहे यह समाचारपत्र नही ‘विचारपत्र’ था। प्रारम्भ में छह महाने तक इसका सम्पादन पण्डित भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव ने बड़ा योग्यता के साथ किया। उसके पश्चात् अन्त तक आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी तथा पण्डित गयाप्रसाद ज्यातिपा ही उसका सम्पादन करते रहे।

जन सन १९४९ ई० में श्री मञ्जिवानन्द सिन्हा ने हिन्दुस्तान रिप्यू चलाया उस समय भी मालवीयजा ने उसकी सब प्रकार से समूल्य सहायता को अगरे सन् १९०३ ई० में उनके चलाए हुए दूसरे पत्र ‘इण्डियन पीपल’ का भी सहायता की।

पत्र-पत्रा जनता में विचार का प्रचार करने में मालवीयजा का बड़ा विरवास था। प्रसंग में एक बात और स्मरण रखन का है हिन्दी समाचार में ‘मालवीयजी को हिन्दी का एक अलग ही स्थान

स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए ।

दुस्त्रियों पर दया करने चाहिए ।

उन जोबा को नहीं मारना चाहिए जो किसी पर घोट नहीं करते । मारना उनको चाहिए जो घाततापी हाँ भयान् जो स्त्रियों पर या किसी दूगरे के घन या प्राण पर बार करते हाँ या जो किसी के घर में घग्न सगाते हों । यन् ऐसे लोगों को मारे बिना घरना या दूगरोँ का प्राण या घन न बच न बच सके तो उनको मारना घम है ।

स्त्रियाँ और पुदया का निदरपन, सघार्द, घोरो का रयाग, ब्रह्मचय, धोरज और घमा का सग्न भमूत के समान सेवन करना चाहिए ।

इम घान को बभी न भूलना चाहिए कि भने बमों का फन भला और सुरे बमों का फन बुरा होता ह और बमों के घनुगार ही प्राणा को बार-बार जम सेना पडता या माघ मिलता है ।

पटपट में बसो बाने भगवान विष्णु का, सवध्यापी ईशवर का सुमिलन करना चाहिए, जिनके समान दूगरा कोई नहीं—जो कि एक ही घद्वितीय है, और जो दुग्न और पाव के हलनेबाले शिवस्वरूप ह, जो सब पवित्र बस्तुमा से अधिक पवित्र, जो सब मङ्गल कामों के मङ्गल स्वरूप है, जो सब देवताओं के देवता है और जो गमस्त ससार के घान्ति, सनातन, भज, अविनाशी पिता है ।

सनानन धर्मों, घार्थममाजी, ब्रह्मसमाजी, गिबग, जन और बौद्ध घादि सब हिंदुमा को चाहिए कि घपने घपने विशेष घम का पालन करते हुए एक दूगरे के साथ प्रेम और घादर से बर्ते ।

घपने विश्वास में दृढ़ता, दूसरे की निंदा का रयाग, मतभेद से सडारीलता (चाहे वह घम मम्बधी हो या लोक-सम्बधी) और प्राणीमात्र से मित्रता रानी चाहिए ।

सुनो इम घम के सवस्व को सुनकर इमके घनुगार घाचरण करो । जो बाम घपने को बुरा या दुग्न्यापी जान पडे उसे दूगरे के साथ नहीं घरना ।

मनुष्य को चाहिए कि जिय बाम को बह नहीं घाहता ह कि कोई दूसरा उसने साथ बरे, उस बाम को बह भी किसी दूसरे के प्रति न बरे । बयाबि बह जानता है कि यन् उसके साथ कोई ऐमी घात करता ह जो उसको प्रिय नहीं ह, तो उसरा बँसी पीढा पहुँचती ह ।

मनुष्य को चाहिए कि न कोई बिसा से डरे न किसी को डर पहुँचावे । श्रीमद्भगवद्गीता के घनुसार घाय भयान् श्रेष्ठ युधों की वृत्ति में दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जसा सज्जन को जीना चाहिए ।

हर एक का उचित है कि यह घाह कि सब लोग गुपी रहें, साथका भला हो, कोई दुग्न न पावे, प्राणियों के दुग्न दूर करने में तत्पर यह दया बनवानों की शोभा ह । घम के घनुसार चलनेवालो को बभी इमका रयाग नहीं करना चाहिए ।

देश की उन्नति के बामो में देशभक्त पारसी मुगलमान, ईगाई यहूतियाँ को साथ मिलकर भी बाम करना चाहिए ।

यह भारतवध, जो हिंदुस्तान के नाम से प्रसिद्ध ह, बडा पवित्र देश है । घन, घम, सुख का देनेवाला यह देश सब देशों से उत्तम है ।

‘कहते हैं कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि य लोग धर्म हैं जिनका अमर इम भारत भूमि में होता है, जिनमें जम लेकर मनुष्य स्वर्ग का मुग और मोक्ष दोनों को पा सकता है ।’

यह हमारी मातृभूमि है, हमारी पितृभूमि है। जो लोग सुजमा हैं—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैं, राम कृष्ण, बुद्ध भक्ति पुरुषा के, महात्मा के आचार्यों के, ब्रह्मपिया और राजपिया के, गुरुप्रो के, धर्मवीरो के, शूरवीरा के दानवीरा के, स्वतन्त्रता के प्रेमी देश भक्ता के उज्जल कामा का की यह कम भूमि है। इस देश में हम को परम भक्ति करने चाहिए और धर्म से भा इमकी सेवा करनी चाहिए।

जिस धर्म में परमात्मा न गुण और कम के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र से चार वर्ण उत्पन्न और जिसमें धर्म, अध, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों के साधन में सहायक मनुष्य का जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य, गृहस्थ ध्यानप्रस्थ और त्याग के चार आधम स्थापित हैं, सब धर्मों का उत्तम स्त्री धर्म का हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सार समार का उपहार चाहते हैं उनका उचित है कि इस धर्म की रक्षा और इसका प्रचार करें।

यह लोग का विश्वास है और यह विश्वास ठीक भा है कि मालवीयजी पक्के बट्टर सनातनधर्मों से। पर मालवीय जी का पक्का ‘सनातनधर्म’ काई सँकरी कोठरी नहीं है जहाँ धर्म प्रतिरिक्त कोद समा ही न सक। वह तो ऐसा बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा है जिसमें आप भी रहें और बाहरवाल भी यह प्रेम से आकर बसे। उनका हृदय उस मन्दिर के समान था जहाँ ऐसे देवता की मूर्ति थी जिसका सब लोग पूजन में मान द प्राप्त करते हैं। न जान कितनी बार सिक्खा के बाच में बैठ कर मालवीय जी ने उनके गुरुमा की वीरता का वरण करके बार सिक्खा को बताया, आप समाज के उत्सवों में उठाने स्वामी दयानन्दजी की हिन्दू सेवा का वरण करने में उनका मन्त्र समझाया। २४ अक्टूबर सन १९३३ ई० को लाहौर के डी० ए० बी० कॉलेज की जुबिली के अवसर पर आप समाज के नेताओं ने जब मालवीय जी को सभापति के लिए नियमित किया तो रण्य हाने पर भी मालवीयजी वहाँ पहुँच और पत्थल में पहुँच कर सबसे पहले महात्मा हसरामजी को गले लगाया और धर्म आपण म कहा कि स्वामी दयानन्दजी ने ऐसे समय अपना काम प्रारम्भ किया जब सब धर्मों से भ्रष्टिया का भयवार फना हुआ था यह उनकी तपस्या और देश प्रेम ही फल था कि उन्होंने जीते जी बरिक्त सम्प्रदाय के दशन किये बगानि बरिक्त सम्प्रदाय ही समार की सबसे ऊँची सम्प्रदाय थी।’

मालवीयजी की धार्मिक भावना जहाँ एक ओर प्रतिरिक्त साधना में बड़ी कोठरी थी वहाँ सामाजिक व्यवहार में अत्यन्त उदार थी। वे कभी युग से पीछे नहीं रहते थे, रहना भी नहीं चाहते थे किन्तु उठाने सग यह प्रयत्न किया कि विरोध करके, समर्थ उत्पन्न करके, सामाजिक विषमता को प्रोत्साहन देकर कोई काम न किया जाए। अपनी धार्मिक विश्वास की प्रशोधन, व्यवहार्य धर्मशास्त्र धर्मशास्त्र परिधानी में भी मन्त्रि कोई परिवर्तन करना ही तो उसमें विश्वासों की सम्मति ले ला जाए और व जसा दिग्दर्शन है वही किया जाए। स्वयं उन्हें का उदर शक्ति में जब सभी मालवीय ब्राह्मण परस्पर सन्निकट सम्बन्धी हो गए और व समाज के विश्वास में बाधाएँ आने लगी तब उन्होंने पण्डितों की सभा, युगाई और जब पण्डितों न मित्र सख्त विवाह की स्वीकृति दे दी तब उन्होंने अपनी पोषा और अपने पोषा का विश्वास ब्राह्मण में करने की स्वीकृति दी। इससे पूर्व भी जब उनके

'कहते ह कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे लोग घन हैं जिनका जन्म इस भारत भूमि में होता ह, जिनमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्ग का सुख और मोक्ष दोनों को पा सकता ह ।'

यह हमारी मातृभूमि ह, हमारी पितृ भूमि ह । 'तो लोग मुज्रामा ह—जिाके जीवन बहुत अच्छे हुए ह, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि पुरुषा के महात्माओं के, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के, गुरुओं के, घमवीरा के, शूरवीरों के, ज्ञानवीरों के, स्वतन्त्रता के प्रेमी देश भक्ता के अथवा कामों के ही यह कम भूमि ह । इस देश में हम को परम भक्ति करने चाहिए और घन से भी हमको सेवा करनी चाहिए ।

जिस घम में परमात्मा न गुण और कम के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र के चार वर्ण उपपाए और जिसमें घम, अथ काम और मोक्ष त चारों प्रकारों के साधन में सहायक मनुष्य का जीवन पवित्र बनातवाले ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के चार आश्रम स्थापित ह सब धर्मों में उत्तम इसी घम को ही भूमि कहत ह । जो लोग सारे समार का उपकार चाहते ह उनको उचित ह कि इस घम को रक्षा और इसका प्रचार करें ।

यह लोग का विश्वास ह और यह विश्वास ठीक भी ह कि मालवीयजी उनके कट्टर सनातनधर्मी थे । पर मालवीय जी का पक्का 'सनातनधर्म कोई सँकरी कीठरी नहीं ह जहाँ अपने अतिरिक्त कोई समा ही न सके । वह तो ऐसा बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा ह जिसमें आप भी रहें और बाहरवाले भी यह प्रेम से आकर बैठे । उनका हृदय उस मन्दिर के समान था जहाँ ऐसे देवता की मूर्ति थी जिनसे सब लोग पूजन में आनन्द प्राप्त करते हा । न जाने कितनी बार सिक्का के धाच में बैठ कर मालवीय जी ने उनके गुरुओं की वीरता का वर्णन करके वीर सिक्का को दलाया, आप समाज के उत्सवों में उठने स्वामी दयानन्दजी की हिन्दू सेवा का वर्णन करने में उनका महत्व समझाया । १४ अक्टूबर सन १९३३ ई० को लाहौर के डी० ए० बी० कालेज की जुबिली के अवसर पर आप समाज के नेताओं न जब मालवीय जी को सभापति के लिए नियुक्त किया तो इच्छा होने पर भा मालवीयजी वहाँ पहुँचे और पण्डाल में पहुँच कर सबसे पहले महात्मा हसरामजी को गले लगाया और अपने भाषण में कहा कि स्वामी दयानन्दजी ने ऐसे समय अपना काम प्रारम्भ किया जब सब ओर से अविद्या का अंधकार पना हुआ था यह उनको तपस्या और देश प्रेम ही फल था कि उन्होंने जीते जी ब्रह्म सम्प्रदाय के दर्शन किये बसकि ब्रह्म सम्प्रदाय ही समार को सबसे ऊँचे सम्प्रदाय था ।'

मालवीयजी का धार्मिक भावना जहाँ एक ओर अतिवृत्त साधना में लगे बैठे थे वहीं सामाजिक व्यवहार में अत्यन्त उदार थी । वे कभी युग से पीछे नहीं रहते थे, रहना भी नहीं चाहते थे किन्तु उन्होंने सदा यह प्रयत्न किया कि विरोध न करके, सत्य उत्पन्न करके सामाजिक विपत्तियों को प्रोसाहन देकर कोई काम न किया जाय । अपना धार्मिक विश्वास को अशोभन अथवा अंधा अंधश्रद्धा प्रसारण परिष्कार में भी गति कोई परिवर्तन करना ही था उसमें विद्वानों की सम्मति ले ली जाय और वे जसा निष्पक्ष रहें वही किया जाय । स्वयं उन्हीं की उपजाति में जब सभी मालवीय ब्राह्मण परस्पर सन्निकट सम्बन्धों हो गए और न जाग्रत के विवाह में बाधाएँ आने लगी तब उन्होंने पण्डिता की समा गुणों और जव पण्डिता ने मिलकर सबकुछ विवाह की स्वीकृति दे दी तब उन्होंने अपनी पत्नी और अपने पौत्रों का विवाह आप ब्राह्मण में करने की स्वीकृति दी । इसमें पूरा भी जब उनको

पुत्र गाविन्द्र मालवीय के विवाह के समय उनके परिवार में यह समस्या खड़ी हो गई थी उस समय मालवीयजी ने उनका धीर विरोध किया था क्योंकि तब तक सामूहिक रूप से सर्वथा विवाह के लिए व्यवस्था नहीं मिल पाई थी ।

एक बार मालवीयजी से कुछ मित्रा और शिष्यो ने आकर निवेदन किया कि बहुत से ऐसे परिवार हैं जिनके नाम सदा आचार व्यवहार तो हिन्दुधर्म के समा हैं किन्तु जो अपने को कहते मुसलमान हैं और वे हिन्दू बनने को भी उद्यत हैं । भ्रष्ट उन्होंने परिदृश्यों को समा बुलाई, उनकी व्यवस्था ली और शुद्धिपत्रा स्थापित कर दी । आज उस समा के कारण लगभग तीन सहस्र परिवार हिन्दू होकर गौरवा और धर्म रक्षा में सहायता दे रहे हैं ।

गांधीजी ने जब हरिजन-आन्दोलन प्रारम्भ किया था उस समय भी मालवीयजी ने अत्यन्त के उदार के लिए परिदृश्यों से व्यवस्था लेकर धर्म शास्त्रानुमोदित अत्यन्तोद्धारविधि का निर्माण किया और अछूत कहलानेवाली जातियाँ के उदार का ऐसा माग खोज निकाला जो पूर्युत धर्मशास्त्रविहित था । यद्यपि उस समय बहुत से सनातनधर्मी मित्रा ने हठ पूजक अछूतों का बहिष्कार ही करने का निर्णय किया था कि तु मालवीयजी उनसे यही कहते थे कि यदि धर्म शास्त्र को प्रमाण मानते हैं तो उसे पूण रूप से शास्त्रतः का से मानिए और इमो के आधार पर उन्होंने काशी, प्रयाग, कलकत्ता और नासिक में अछूतों का मन्त्रीपदेश देकर उन्हें समत्व का पद प्रदान किया और उनका दोषा सकार किया ।

द्वार बोधधर्म का भी पर्याप्त आन्दोलन हुआ । सारनाथ ही उनका प्रथम केन्द्र है जहाँ गौतम बुद्ध ने नवप्रथम अपने धर्म चक्र का प्रवर्तन किया था । वहाँ के नवीन मन्दिर के सत्यापक स्वर्गीय धनारविध धर्मपाल भिखु, मालवीयजी के बड़े मित्र थे । मालवीयजी कई बार उनसे मिलने सारनाथ गए थे । इनोलिए बोद्धो ने भी मालवीयजी का अनेक बार सम्मानित किया । बिडलाजी ने सारनाथ में बोद्ध यात्रियाँ के लिए धार्मिक धर्मशाला नामक जो विशाल भवन बनवाया है उसकी नींव भी मालवीयजी के हाथ ही पड़ी थी ।

इतना ही नहीं मुसलमान और ईसाइया की समा म भी मालवीयजी का बड़ा सम्मान हुआ और उनके धर्मोपनिषद् हुए ।

मालवीयजी अपने धर्म की निन्दा तो सुन ही नहीं सकते थे साथ ही दूसरे धर्म की निन्दा भी नहीं सह सकते थे । एक बार काशा हिन्दू विश्वविद्यालय में धार्मिक समाज का उत्सव हो रहा था । उनमें एक उपदेशक महोदय ने इस्लाम तथा ईसाई धर्म पर जो धर्म में धारा कहा । मालवीयजी को यह खान बुरा लगी और उन्होंने प्रबन्धका से यह बहना भेजा कि हिन्दू विश्वविद्यालय में ऐसे लोगो के व्याख्यान नहीं होने चाहिए जिनकी वाणी सत्यतः न हो और जो दूसरे धर्मों और धर्मप्रवर्तकों को निन्दा करें ।

हमारे देश में धार्मिक शास्त्राध्य बहूत होते रहे हैं और हो रहे हैं किन्तु सम्भवतः इन शास्त्राध्यों में श्री शङ्कराचार्य और श्री मण्डन मिश्र के शास्त्राध्य के समान निष्पक्ष कभी नहीं मिला । बीच में बहुत शास्त्राध्य होत सन्त य लोग इकट्ठा होते थे, जिनपर हन्ना मचानेवाले धार्मिक हाते थे वही दल जोत जाता था और उपरने पर तत्त समाचार पत्रा में जान होता था कि दोना दल जात गए और दोना दल

हार गए । सब अपनी अपनी खपली पर अपना अपना राग भाते थे । कुशल है कि यह प्रथा अब समाप्त हो गई है । हमारे स्वातंत्र्य आन्दोलन ने जहाँ स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये प्रबल उद्योग किया वहीं उससे बड़ी भारी हानि यह भी हुई कि लोगों के हृदय से धार्मिक भावना लुप्त हो खली और धर्म प्रचार की सारी शक्तियाँ स्वतंत्रता प्राप्ति में लुप्त गई । अब स्वतंत्र हो चुकने पर जो भयंकर भ्रष्टाचार प्राप्त है उसका कारण ही यह है कि हम लोग धर्म निरपेक्ष होने के कारण दया निरपेक्ष सत्य निरपेक्ष, शील निरपेक्ष, जीव निरपेक्ष और ईश्वर निरपेक्ष होकर केवल स्वापेक्ष रह गए । क्या ही अच्छा हो यदि इस समय पुनः सबका हृदय धार्मिक विषया में मालवीयजी के समान हो कि अपना धर्म भी पालन करें और दूसरे के धर्म का आदर करना भी सीख जाय । यदि इतनी धार्मिक सहनशीलता हम लोग में आ जाय तो हमारी बहुत सी शक्तियाँ संगठित हो जाय और भ्रमर पटन पर हम दूसरों को टिँवा दें कि धर्म क्या है और जीवन में उसकी क्या आवश्यकता है ।

कहा जाता था कि यदि किसी को धर्म के दर्शन करना है, धर्म से खुलकर बातें करनी हैं और धर्म की ज्योति लेनी हो तो जाकर मालवीयजी के दर्शन कर ले । बहुत से लोगो के हृदय में धर्म आकर निवास करता है पर मालवीयजी तो सरारोह धर्म थे जिनके आचार विचार, वशमूपा और बोलचाल से धर्म की ज्योति छिटकती थी । उनकी वाणी इसीलिये प्रायः कह उठती थी— 'सिर जावे ो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय ।'



समाज की नींव : अस्फुट और मन्त्रदीक्षा

'सात वीजिए नौ नौ चूल्ह वाली कहावत तो सुनी ही जाती है पर तीन हिंडू तरह मत वाली कहावत उससे भी पुरानी है। नन्दवस की समाधि पर चाणक्य न कूटनाति के बल पर जो राजनीतिक एक्ता का प्रासाद सजा किया था उस महाराज अशाक का दया का नद एमा बहा के गया कि उमके अवशेष खंडहरान घर म तो झगडा सडा कर ही दिया साथ हो उसन वाहरवाग को भी उमम भाग लन का निमन्त्रण दे दिया। इस राजनीतिक उथल-पुल में 'जसा राजा वैसी प्रजा के अनुसार मनु और बुद्ध धोना का राज्य साथ साथ चन्ता रहा। झूल की पैंग के समान भारत के भोल भाले नर-नारी मनु के सस्कार और बुद्ध के रावममानवाद के बीच में मूलन लग। जो बड थ जिनके हाम में तलवार थी या जिनका भगवान् न बुद्धि विद्या या धन दिया था उही का राज्य था उही का बोलबाला था।

दीनता बेरल पट की ही भूया नही रखती, वह बुद्धि और आत्मगौरव को भी भूया रखती ह, और इसीलिय निधन लाग चुप मारक अपनी पीठ उधाड देन है जिस पर चारा आर से अत्याचारिय काड बरसन लगत ह। पहरे ता कुछ पोडा अवश्य होता ह पर फिर अभ्यास पड जाता ह और कुछ दिना में वह अभ्यास एसा दृढ हो जाता ह कि वे उस वैसे ही अपना धम मान लेत ह जैसे बहुत स छात्र अध्यापक की वेंता क इतन अभ्यस्त हा जात ह कि छाज-हपा जाती रहती ह पिटन में उन्हें आनन्द आन लगता ह और फिर दूसरे लाग उह अपांष समझ कर उन्हें धकेल देत है पहाड से नीच और उह सिख सिख कर जोन के लिय ऊपर स कमी-बभा रोटी के दो टुकड डाल देन हं। महा दया हिन्दू समाज म शूद्रा की हुड।

कहावत ह कि 'घर का जागी जागना आन गाव का सिद्ध घर म ता गुणा का आदर होता नही। काई कितना भी पब लग गया, हो या पा गया हा पर घरवाले तुलसीनाथ का बही तुलसीया समझते हं। शूद्रा की घर में ता काई पूछ हा न सकी पर बाहर से जा अनियि—सचमुच वे अतिथि ही आए थे—आए उन्हें हिन्दुस्तान के हर भरे मगन म भरपेट भोजन और मोटा जल मिना और मिठे रसील मोठ फल—बस वे अपना पहाडी घर भूड कर और यहीं डेरा जमाकर बैठ गए। पर उन्हें अपना रथा क लिय बड दल भा आवश्यकता था। उहान साम दाम दण्ड और भ", सभी प्रकार से यहीं वाता को अपन दल म मित्राना प्रारम्भ किया। कंचो जातिवाडे ता भत्रा उनकी चमत्-दमक के चक्कर में आत गया लग थ पर जा भूए थ, पौडिन व अपमानिन थ, उन्हें जहाँ पेटभर भोजन मिला वही का मान लग। हमार ये अतिथि खुलकर दिन-राह हमार पर की नोब रो-गोद कर अपना-अपना भवन उडा रहे थ, पर ह्य दयत हुए भी पीनक में पं पगुरात रह। हमें यह समझ नहीं आई कि जिस दिन हमार नाव हा नही रटगी उस दिन हमार यह भवन वहाँ पडा रहगा। गोस्वामी तुलसीदासजा न आकर बहुत समझाया, प्रताप गिवाजी और छत्रवाल भी आने बङ्ग से ह्य छूट की रोक कर उलठा हुई नीब वडूत कुछ जमा गण पर दगा बहुत बिगड गई। सिक्का के धन्नीय गुरुआ न भा बने सौमाल ता की पर न जान बब और दसे हमार सिक्क भाई हिन्दू समाज के विनाल भवन की एक बोठरा लेकर अलग हा गए और उसा का रसा में लग गए

मानो उनका पूरे भवन से कुछ भी नाता ही नहीं है।—अब उन्हें कौन गमजाने कि यदि इग विभाजन भवन पर कुछ भी आँच आई तो उनकी कान्ठरी भा आँच खाए बिना न रहगी। यद्यपि १९८७ में देग विभाजन ने उन्हें पर्याप्त हानि पहुँचाई किन्तु आज भी उनके कुछ नेता सिक्किमस्तान बनाने का अद्विवेक पूरा प्रस्ताव कर रहे हैं। आर्य्य-समाज ने केवल उपदेग मात्र ही नहीं लिए बरन् यह सचष्ट होकर हिन्दू भवन के निर्माण काय में जुट गया। जो इन्हें बाहर वाले लोग उठा ले गए थे उनमें से कुछ का तो उनके मकान में सख्त लड़ाया और जो उठाए लिए चले जा रहे थे उनमें बाच ग ही छीन कर रख लिया। पर उसमें त्रुटि यही थी कि यह काम तो ठीक करता जाता था पर घर वाला को भी आलसी, अचविश्वासी और हागी कह कर चिढ़ाता जा रहा था इसलिए घर के बहुत से लोग न इसका साथ न दिया। हम समझते हैं कि यदि यह आपस की तू-तू म म बढ ही जाते तो हम लाग समझत अपने मकान की रक्षा और भी सफल रीति से कर सकते। पहली छाड कर सीधा-मीधा बात यह है कि आर्य्य समाज ने जो गुडि का काम प्रारम्भ किया उसका बड़ा विरोध हुआ पर वह अपन पयपर डटा रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्द जम महापुरुष का धमाच मुसलमान की छुरी का आवेग बन जाना पडा। उधर सनातन धर्म गिरे हुए को उठान में उजाता था, इसलिए वह चुपचाप एक आर लडा यह सब देखाता रहा।

कट्टर सनातनधर्मिया में मालवीयजी एक ऐसे महापुरुष निकल जिन्होंने बेचार दोना और पतिता की पुकार सुनी और उनकी सहायता को दौड पड। उन्होंने ही सब से पहल सन १९०९ ई० में निम्न वर्गों की शिक्षा के लिये कौंसिल में भाषण दिया था। सन १९२१ ई० के मोपला विद्रोह ने मालवीयजी को चौकन्ना कर दिया और उन्होंने हिन्दू महासभा सङ्घटित करके हिन्दुआ को एक डोरी में बाध रखने का उद्योग किया। साथ ही उन्होंने देखा कि हमारे जो जखूत भाई हमारे हाथ से निकले चले जा रहे हैं उन्हें कोर मौखिक प्रोत्साहन से सतौप नहीं देना चाहिए बरन् कोई ऐसा भी उपाय किया जाय कि इनका भी उद्धार हो और साथ ही उनके मन में यह भाव भी न कि समाज में हमारा भी कोई स्थान है और दुख पडने पर हमारा भी सहायता करने वाला बान है। मालिये मालवीयजी ने गुडि का बीडा तो उठाया है, साथ ही उन्होंने अपनी सनातनधर्म सभा में अस्पृश्यता को मन्त्रदाना देने का भी प्रस्ताव स्वाकृत करा लिया। यह कारा प्रस्ताव ही न रहे गया बरन् सन १९२७ ई० में कांगो में महागिबरात्रि के दिन दशाश्वमेष घाट पर उन्होंने ब्राह्मण, धर्मिय, बश्य और गूड सभा को ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नारायण, ॐ रामाय नमः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आदि मन्त्रों की दाशा भा दा। दोगा देनेवाला में ब्राह्मण भी थे और चाण्णल भी थे।

यह दृश्य क्या कभी भूला जा सकता है कि सह्या पुरुष और स्त्री स्नान करके एकत्र हैं और मालवीयजी रोग डुपट्टा आकर एक एक व्यक्ति को मन्त्र और उपदेग दे रहे हैं और फिर उनसे बचन लेकर आगावादा दे रहे हैं। जान पडता था माना समुद्र की भीषण लहरों में पड हुए सकडा सह्या प्राणिया का बचाने के लिये कोई निया जयानि सह्या हाथ बढा कर उन्हें ऊपर उठा रही हो। वह उनका तेज देखने ही योग्य था।

३० न्मिम्बर सन १९२८ ई० का कलरता काप्रेस ही रही थी। उधर मालवीयजी ने हाबडा पुल के पास लाहाघाट पर मन्त्र का मन्त्र दाना देने का घोषणा कर दी। बडा हल्ला हुआ। मालवीयजी का यह बात बहुत से सनातनधर्मिया का अच्छी न लगा। वे सब उनपर इस प्रकार टूट पड माना थे

कोई वग्न नारो पाप करने जा रहे हो। एवं व्यक्ति ने उम दृश्य का आलो देना वर्णन करते हुए लिखा है —

“ता० ३० निम्बर सन् १९२८ ई० को प्रातः काल कलकत्ते में गङ्गातट पर लोहापाठ नामक स्थान में पण्डित मालवीयजी—द्वारा मय हिन्दुआ की अकार के माय दीक्षा देने की तैयारी की गई थी। एक शामियाने के नीचे होम और दीक्षा की व्यवस्था की गई। लगभग आठ बजे प्रातः काल मालवीयजी दीक्षा-स्थान पर आ पधारे। दीक्षा लेनेवाले लोग इकट्ठा हो ही रहे थे कि कुछ मारवाडी सज्जना और कुछ प्राचीन विचार के पंडित बहुत स रगगा को साथ लेकर वहां आ पधारे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने खडा किया हुआ शामियाना गिरा दिया और होम तथा दीक्षा की सामग्री भी नष्ट भ्रष्ट कर दी। यह सब उपद्रव देख कर मालवीयजी गङ्गाजी के किनारे जाकर वहाँ दीक्षा-कार्य करने लगे। परन्तु उपद्रवियों ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और उनका काय में बाधा डालने लगे। मालवीयजी ने उनसे कहा कि यदि बाई इस बारे में शास्त्रीय विरोध ही तो मैं आपसे किसी भी पण्डित से मास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ। इतने में उन्होंने मालवीयजी को घेर लिया और उनपर बीच-मट्टी फेंकने लगे। परन्तु मालवीयजी अत्यन्त शान्ति से और हँसते हुए उसे महन करते रहे।

कुछ देर के पश्चात् शान्ति हुई और एउ पण्डित अपना विरोध स्थापित करने के लिये आगे बढ़े। विरोधी पक्ष की पूरी पण्डित मण्डली की आगा से एक पण्डित ने लगभग तीन घण्टे तक व्याख्यान देकर अपना मत स्थापित किया। इसके पश्चात् उनका उत्तर देने के लिये मालवीय जी खड़े हुए। उनके लक्ष होते ही चारों ओर से जयजय कार की ध्वनि गूँज उठी। मास्त्रीयजी ने विवाद के निर्णय के लिये विरोधी पण्डितों से पहले ही पूछ लिया। कि आप लोगो को कौन से ग्रन्थ माय हैं तदनुसार उन्होंने प्रमाण एक एक प्रश्न का उत्तर उही प्रश्नों के उद्धरण के प्रमाण से दिया। मालवीयजी की विचार-शक्ति लोका भी इतनी अच्छी लगी कि दण्डना ने प्रवर्ण जयजय कार के द्वारा मालवीयजी का गौरव-वर्धन किया। लगभग दो घण्टे शान्ति की विरोधी पक्ष के लोग अपना-पना मुँह लेकर लौट गए।’

उसके पश्चात् मालवीयजी ने फिर स्नान किया और साठे छौन बजेतक दीक्षा देने लगे। समय के अभाव से उम दिन केवल चार सौ व्यक्तियों को ही वे दीक्षा दे पाए।

उस अवसर पर हिन्दू महासभा के अध्यक्ष डा० मुञ्ज, श्रीमत्स्वामी सत्यानन्दजी, श्री पधराज जन शक्ति अनेक नेता महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्क-भूषण तथा वज्जाल हिन्दू महासभा के अध्यक्ष तथा समय बहुत से स्वयंसेवक मालवीयजी के साथ प्रातः काल से ही दीक्षा-महाराज्य ममाप्त होने तक घराघर लगे रहे।

दीक्षा का क्रम यह था कि सभी दीक्षार्थी एक-एक करके स्नान करते आने थे, उनको पहले पञ्चमन्त्र मन्त्रण कराया जाता था और तब उनको ‘ॐ नमः शिवाय’, ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’ ॐ रामाय नमः अथवा ‘ॐ नमो नारायणाय’ में से किसी मन्त्र की विधिपूर्वक दीक्षा दी जाती थी। इसी पश्चात् त्रिम मन्त्र की दीक्षा दी जाती थी यह छया हुआ मन्त्र तथा एवं उत्तरीय वस्त्र उस व्यक्ति को आटने के लिये लिया जाता था। अन्त में चने और बत्ताये बाँट कर कार्य समाप्त किया जाता था।

फिर मन्त्र-दीक्षा

कुछ दिनों के पश्चात् बलवत्ते में ही ६ जनवरी सन् १९२८ को दूसरा दीक्षा-समारम्भ हुआ था। इन बार दीक्षा-समारम्भ के चारों ओर पुलीम और स्वयं सेवका का पूरा प्रबन्ध किया गया था। यह सब हाते हुए भी जब पण्डितजी नगी में स्नान के लिये उतरे तब एक गिवा मूत्रधारी गुण्टा छुरा लेकर उनपर दूट पड़ा। परन्तु सौभाग्यवश पण्डितजी बाल-बाल बच गए और गुण्टा पकड़ लिया गया। उस दिन भी मालवीयजी ने सहसा अडूता तथा अथ हिन्दुओं को दीक्षा दी। उस दीक्षा-समारम्भ में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ अगरेज सज्जन भी आ पहुँचे। यह दीक्षा काय्य प्रातः काल नौ बजे प्रारम्भ होकर दिन के बारह बजे धूमधाम सहित निबन्धन समाप्त हुआ।

इसके अनन्तर प्रयाग और काशी में कई बार मालवीयजी ने मन्त्र-दीक्षा दी। १२ मार्च, सन् १९३६ ई० को मालवीयजी नासिक गए। वहाँ गोदावरी नदी के राजेवहादुर घाटपर उठाने लगभग डेढ़ सौ हरिजनता को 'नमः शिवाय' मन्त्र की दीक्षा दी। यहाँ भी मालवीयजी का अपूर्व सम्मान हुआ और नगर की विभिन्न सस्थाओं का ओर से उन्हें अनेक मानपत्र दिए गए। मन्त्र-दीक्षा के विषय में वृत्त से लोग न उनका विरोध किया पर मालवीयजी ने उस वचन के समान आचरण किया जो रोगी के लाभ के लिए उसका गालियाँ की चिन्ता नहीं करता।

इससे पूर्व १ अगस्त सन् १९३३ ई० को महात्मा गांधी ने हरिजन आन्दोलन आरम्भ कर दिया था, जिसका मुख्य उद्देश्य था—हरिजनता के लिये सावजनिक स्थानों का प्रयोग खुलवाना और मन्दिरों में उनका प्रवेश कराना। इसके लिये महात्मा गांधी चाहते थे कि एक विधान बन जाय और हरिजनता के लिये मन्दिर खुल जायें। महात्मा गांधी ने इस काय्य के लिये सार भारत का दौरा किया। उन्हें स्थान-स्थान पर हरिजन आन्दोलन के लिये धन भी मिला और उसका सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि कितनी ही सावजनिक मन्दिर हरिजनता के लिये खुल गए, कितने बुरा से उन्हें पानी भरने की सुविधा हो गई, हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सावजनिक विद्यालयों में उनके पढ़ने की व्यवस्था हो गई। गांधीजी की सब बातें तो मालवीयजी मानते थे पर अब यह नहीं चाहते थे कि गुण्टा को मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार सरकारी कानून द्वारा मिले। गांधीजी से जिन्हें थोड़ा सा भी परिवन्ध होगा उन्हें यह जानकर सचमुच आश्चर्य होगा कि सरकार में तनिक सा भी विश्वास न रखने वाले गांधीजी हरिजनता के मन्दिर प्रवेश के लिये सरकारी कारण क्या लेना चाहते थे? पर उनका यह दौरा १ अगस्त सन् १९३४ ई० को काशी में आकर समाप्त हो गया। उस अवसर पर काशी के सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल के मन्त्रण में बड़ी भीड़ हुई। वहाँ मालवीयजी ने अपनी इस नीति को बड़े सुन्दर ढंग में प्रकट किया। उसी अवसर पर पहली अगस्त-सन् १९३४ ई० को लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि के दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी गांधीजी का भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया।

महात्मा गांधी ने अपने भाषण में कहा—

पूज्य मालवीयजी! भाइयो और बहना!

मुझे ईश्वर ने दुबारा काशी में आने का मौका दिया है, मुझे इसका बड़ा हर्ष है, और मुझे खुशी होती है कि इन पवित्र धामों में ही मेरा हरिजन दौरा समाप्त हो रहा है। मैं जो कुछ पैगाम देना चाहता हूँ वह यहाँ ही दे सकता हूँ। मुझे दुःख है कि वर्णाश्रम स्वराज्य सभ की तरफ से जो पण्डित जी आ रहे थे और जिनके लिये प्रबन्ध भी हो गया है वे कारणवशात् यहाँ अभी तक न

आ सके । मुझे यह प्रिय लगता है कि जिनका इन वारे में हासिक विरोध है वे भी उसी प्लेट फार्म पर आकर बोलें जिस पर मैं बोलता हूँ । मेरा यह धाय धार्मिक ही है । इममें दुराग्रह को स्थान नहीं है । इसके लिये कोई भी प्रयत्न किया जाय वह अपूर्ण ही होगा । मुझसे गर्लतिया हो सकती है और हुई है । इसमें भी मैं गलती नहीं कर सकता, ऐसा मैं दावा नहीं कर सकता और न मने किया । जो मैं आज मानता हूँ वह नई बात नहीं है । बचपन ही से यह मेरे जीवन के साथ गुँथी रही है । यह मुझे किसी ने बतलाया नहीं है । जिस समय मेरे ऐसे विचार हुए उस समय मैं स्वेच्छाचारी स्वच्छन्द बालक था । मुझे राम नाम का मन्त्र सिखाया गया था । जिससे मैं भयमुक्त और सुरक्षित रहा । और जो पुरुष भी उसका पालन करने की चेष्टा करे वह भी भयमुक्त हो सकता है, तो यह बात मेरे जीवन में कोई नई पदा नहीं हुई है । इस बृद्धावस्था में भी पचास या सौ वष से अधिक से जा मूसखता बली आई है उसे हटाने में मुझे तनिक भी सकोच न होगा ।

मुझे कहना न होगा कि जितना प्रयत्न शास्त्रियों और पण्डितों से विचार करने का हो सकता है, मने किया । जिन शास्त्रियों का अभिप्राय है कि अस्पृश्यता शास्त्र सम्मत है, मैं ऐसे शास्त्रियों से मित्रा । कुछ निमन्त्रण से आए और कुछ स्वच्छा से । वे मानते थे कि जाघुनिक जस्पृश्यता शास्त्र सिद्ध है । मैंने उनकी बात भी सुनी किन्तु उनको बातों ने मेरे दिल पर कोई असर नहीं डाला । मुझे जब बभी अपने अनान का पता चला है तो मैंने बिना किसी की प्रेरणा के ही अपनी भूल स्वीकार कर ली है । शास्त्रियों की बातें समझते हुए भी मेरे दिल पर असर डालने वाला कोई अस्पृश्यता का प्रमाण नहीं मिला । कोई लोग अस्पृश्य भाइयों को सट्टा सात करोड के करीब बतारते हैं किन्तु इसमें अतिशयोक्ति है । वास्तव में वे पाच करोड हैं । इसके प्रमाण के लिये हम जिस स्मृति को मानते हैं वह नई स्मृति हम सेसस के नाम से पुकारते हैं । इम सेसस के अनुसार ही हम कहते हैं कि इतने अस्पृश्य हैं । उसमें प्रति दस वष में परिवर्तन होता जाता है । चन्द जातिवाँ जो दस वष में अस्पृश्य मानी जाती है वे अगले दस वष में स्पृश्य हो जाती हैं । और जो आज स्पृश्य है वे दस वष बाद अस्पृश्य हो जाती हैं । इसके लिये शास्त्र में कोई प्रमाण नहीं है । इन लागों से जसा बत्ताव चल रहा है उसके लिये सायद ही ऐसा कोई नास्तिक हो जो कहेगा कि शास्त्र में इसके लिये प्रमाण है । यदि एक भद्रों का वाग्य कुँ पर जाता है तो पता चलने पर लोग उसे पानी नहीं भरने देते । उसे छू जाने पर कुँ अस्पृश्य माना जाता है और वह हरिजन बालक पीटा जाता है, इस अयाय के लिए हिन्दू जाति ही जिम्मेदार है ।

एक हरिजन बालक को यूमोनिया हुआ, फेफड़े विगड गए, खाँसी और सर्दी भी हुई, १०४ गिरी बुवार हो गया । उसके लिये डाक्टर चाहिए, डाक्टर के लिये फोटो चाहिए, डाक्टर हिन्दू होता हुआ भा उसकी नाडी परीक्षा के लिये मुमत्मान डाक्टर भोजना है तब डाक्टर महोत्सव उसकी बाहर बुलाते हैं और ऊपर से देख कर ही पुढिया देने का बचन देकर चले जाते हैं । जब डाक्टर मुझे देखा है तो अपने यन्त्र को बभी मर्न लगाता है, बभी वहाँ लगाता है और अच्छी प्रवार से परीक्षा करता है, किन्तु हरिजन को मबल देग कर ही वह रोग पहचान लेता है । यदि ऐसा मौका होता तो मैं इसे अन्तितगत स्वभाव का दोष बतला कर ही छाड देता और किसी के सिर जिम्मेदारों न डालता परन्तु ऐसे संबडा उदाहरण मौजूद है । सेगम के दानर में जो अछूत लिखे गए हैं वे जम से ही ऐसा मरी बुद्धि और मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता । इसका उत्तर शास्त्री लोग भी मुझे न दे

फिर मन्त्र दीक्षा

कुछ दिना के पचास बलवत्ते में ही ६ जनवरी सन् १९२८ को दूसरा दीक्षा-समारम्भ हुआ था। इस बार दीक्षा-स्थान के चारों ओर पुलीम जोर स्वयं सेवका का पूरा प्रबंध किया गया था। यह सब होने हुए भी जब पण्डितजी नगरी में स्नान के लिये उतरे तब एक गिन्ना मूयधारी गुण्डा छुरा लेकर उनपर टूट पड़ा। परन्तु सौभाग्यवश पण्डितजी बाऊ-जाल बच गए और गुण्डा पकट लिया गया। उस दिन भी मालवीयजी ने सहभा अडूता तथा अय हिन्दुओं का दीक्षा ली। उस दीक्षा-समारम्भ में अनेक प्रतिष्ठित-व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ अगरेज सज्जन भी आ पहुँचे। यह दीक्षा काव्य प्रातः काल नौ बजे प्रारम्भ होकर दिन के बारह बजे धूमधाम सहित निविघ्न समाप्त हुआ।

इसके अनन्तर प्रयाग और काशी में कई बार मालवीयजी ने मन्त्र-दीक्षा दी। १२ मार्च, सन् १९३६ ई० को मालवीयजी नासिक गए। वहाँ गोलावरी गंगा के राजबहादुर घाटपर उहाने लगभग डेढ़ सौ हरिजनो को नम शिवाय मानवी दीक्षा दी। यहाँ भी मालवीयजी का अपूर्व सम्मान हुआ और नगर की विभिन्न-संस्थाओं की ओर से उन्हें अनेक मानपत्र दिए गए। मन्त्र-दीक्षा के विषय में ब्रह्म म लोगो ने उनका विरोध किया पर मालवीयजी ने उस बध के सम्मान आचरण किया जो रोगों के लाभ के लिए उमकी मालिनी की चिन्ता नहीं करता।

इससे पूर्व १ अगस्त सन् १९३३ ई० को महात्मा गांधी ने हरिजन आन्दोलन आरम्भ कर दिया था जिम्का मुख्य उद्देश्य था—हरिजनो के लिये सावजनिक स्थानों का प्रयाग सुलवाना और मन्त्रिा में उनका प्रवेश कराना। इसके लिये महात्मा गांधी चाहते थे कि एक विधान बन जाय और हरिजन लोगो के लिये मन्दिर खुल जायें। महात्मा गांधी ने इस काव्य के लिये सारे भारत का दौरा किया। उन्हें स्थान-स्थान पर हरिजन आन्दोलन के लिये धन भी मिला और उसका सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि कितने ही सामानिक मन्दिर हरिजनो के लिये खुल गए कितने कुआँ से उन्हें पानी भरने की सुविधा हो गई हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सावजनिक विद्यालयाँ में उनके पढ़ने की व्यवस्था हो गई। गांधीजी की सब बातें तो मालवीयजी मानते थे पर वे यह नहीं चाहते थे कि गूना को मन्त्रिा में प्रवेश करने का अधिकार सरकारी कानून द्वारा मिले। गांधीजी से जिन्हें थोड़ा सा भी परिचय होगा उन्हें यह जानकर सचमुच आश्चर्य होगा कि सरकार में तनिक सा भी विद्वान न रखन वाले गांधीजी हरिजनो के मन्दिर प्रवेश के लिये सरकारी कारण क्या लेना चाहते थे? पर उनका यह दौरा १ अगस्त सन् १९३४ ई० को काशी में आकर समाप्त हो गया। उस अवसर पर काशी के सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल के मन्तान में बड़ी भीड़ हुई। वहाँ मालवीयजी ने अपनी इस नीति को बड़े सुन्दर शब्दों में प्रकट किया। उसी अवसर पर पहली अगस्त-सन् १९३४ ई० को लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि के दिन काशी हिन्दू विद्वद्विद्यालय में भी गांधीजी का भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया।

महात्मा गांधी ने अपने भाषण में कहा—

पूज्य मालवीयजी! भाइयो और बहना!

मुझे ईश्वर ने दुबारा काशी में आने का मौका दिया है, मुझे इसका बड़ा हफ है, और मुझे सुशी होती है कि इस पवित्र धाम में ही मेरा हरिजन दौरा समाप्त हो रहा है। मैं जो कुछ पगाम देना चाहता हूँ वह यहाँ ही दे सकता हूँ। मुझे दुःख है कि वर्णाश्रम-स्वराज्य सध की सरफ से जो पण्डित जो आ रहे थे और जिनके लिये प्रबंध भाँहा गया है वे कारणवशात् यहाँ अभी तक न

आ सके। मुझे यह प्रिय लगता है कि जिनका इन वारे में हार्दिक विरोध है वे भी उसी प्लेट फार्म पर आकर बोलें जिस पर मैं बोलता हूँ। मेरा यह वाय पार्थिव ही है। इसमें दुराग्रह को स्थान नहीं है। इसके लिये कोई भी प्रयत्न किया जाय वह अपूण ही होगा। मुझसे गलतियाँ हो सकती हैं और हुई हैं। इसमें भी मैं गलती नहीं कर सकता, ऐसा मैं दावा नहीं कर सकता और न मने किया। जो मैं आज मानता हूँ वह नई बान नहीं है। बचपन ही से यह मेरे जीवन के साथ गुँथो रहो है। यह मुझे किसी ने बतलाया नहीं है। जिस समय मेरे ऐसे विचार हुए उस समय मैं स्वेच्छावारी स्वच्छन्द बालक था। मुझे राम नाम का मात्र सिखाया गया था। जिससे मैं भयभुक्त और मुरगित रहा। और जो पुरुष भी उसका पालन करने की चेष्टा करे वह भी भयभुक्त हो सकता है, तो यह बान मेरे जीवन में कोई नई पैदा नहीं हुई है। इस वृद्धावस्था में भी पचास या सौ वर्ष से अधिक से जा मूढता चली आई है उसे हटाने में मुझे तनिक भी सबोध न होगा।

मुझे बहना न होगा कि जितना प्रयत्न शास्त्रियाँ और पण्डितों से विचार करने का हो सकता है, मैंने किया। जिन शास्त्रियों का अभिप्राय है कि अस्पृश्यता शास्त्र सम्मत है, मैं ऐसे शास्त्रियों से मिलता। कुछ निपात्रण से आए और कुछ स्वेच्छा से। वे मानते थे कि आपुनिक अस्पृश्यता शास्त्र सिद्ध है। मैंने उनकी बातों को सुनी किन्तु उनकी बातों ने मेरे दिल पर कोई असर नहीं डाला। मुझे जब किसी अपने ज्ञान का पता चला है तो मैंने बिना किसी की प्रेरणा के ही अपनी भूल स्वीकार कर ली है। शास्त्रियों की बातों समझते हुए भी मेरे दिल पर असर डालने वाला कोई अस्पृश्यता का प्रमाण नहीं मिला। कोई लोग अस्पृश्य भाइयों की संख्या सात करोड़ के बरोबर बताते हैं किन्तु इसमें अतिशयोक्ति है। वास्तव में वे पाँच करोड़ हैं। इसके प्रमाण के लिये हम जिस स्मृति को मानते हैं वह नई स्मृति हम सेसस के नाम से पुकारते हैं। इस सेसस के अनुसार ही हम कहते हैं कि इतने अस्पृश्य हैं। उसमें प्रति दस वर्ष में परिवर्तन होता जाता है। चन्द जातियाँ जो दस वर्ष में अस्पृश्य मानी जाती हैं वे अगले दस वर्ष में स्पृश्य हो जाती हैं। और जो आज स्पृश्य हैं वे दस वर्ष बाद अस्पृश्य हो जाती हैं। इनके लिये शास्त्र में कोई प्रमाण नहीं है। इन लोगों से जसा बत्ताव चल रहा है उसके लिये सायद ही ऐसा कोई नास्तिक हो जो कहेगा कि शास्त्र में इसके लिये प्रमाण है। यदि एक भद्रों का सालक कुएँ पर जाता है तो पता चलने पर लोग उसे पानी नहीं भरने देते। उसे छू जाने पर कुआँ अस्पृश्य माना जाता है और वह हरिजन बालक पीटा जाता है, इस अत्याय के लिए हिन्दू जाति ही जिम्मेदार है।

एक हरिजन बालक का यूनोनिया हुआ, फेफड़े विगड़ गए, खासी और सर्दी भी हुई, १०४ डिग्री बुझार हो गया। उसने लिये डाक्टर चाहिए, डाक्टर के लिये फोस चाहिए, डाक्टर हिन्दू होता हुआ भी उसको नाशो परीक्षा के लिये मुसलमान डाक्टर भेजा है तब डाक्टर महोदय उसको बाहर बुलाने हैं और ऊपर से देख कर ही पुडिया देने का वचन देकर चले जाते हैं। जब डाक्टर मुझे देखा है तो अपने मात्र को बन्नी यहाँ लगाता है, बन्नी वहाँ लगाता है और अच्छी प्रकार से परीक्षा करता है, किन्तु हरिजन का कबल दण्ड कर ही वह रोग पहचान लेता है। यदि ऐसा भौका होता तो मैं इसे व्यक्तिगत स्वभाव का दोष बतला कर ही छुड़ा देता और किसी के सिर जिम्मेदारी न डालता परन्तु ऐसे सक्का उदाहरण मौजूद हैं। सेसस के दफ्तर में जो अछूत लिखे गए हैं वे जन्म से ही ऐसा मेरी बुद्धि और मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। इसका उत्तर शास्त्री लोग भी मुझे न दे

सवे । अभी-अभी देवनायकाचार्य जी आए ह जिन ध्यान मे आपने मेरे शब्द सुने ह उमा प्रकार पण्डित जो वा भाषण भी सुनें और जसा असर पड़े, जो आप उचित समझे वना निश्चय कर सकत ह । म सिफ एक बात और बतूगा । काशा व पण्डिता का आर स जा मुझे स्वागत-पत्र मिला ह उमके लिये म आभारी हूँ । उसे म आप लागा वा आशिर्वात् मानता हूँ । जो द्रव्य मुझे मिला है उमके लिये म धन्यवाद देता हूँ । यद्यपि वह बहुत चाडा ह परन्तु मुझे विस्वाम दिखाया जा रहा ह कि अमा और सग्रह करने की चेष्टा की जापगी ।

इनके पश्चात् वर्णाश्रम स्वराय सष के नता श्री देवनायकाचार्य जीने धर्मशास्त्र के अनुसार बड़ी मधुर वाणी में अपना मत प्रकट किया और इनके पश्चात् पय माण्डीय जी ने बहना प्रारम्भ किया—

‘ देविया और सज्जना ।

अभी आप लोग के सामने था देवनायकाचार्य जी न बड़ी गिष्टता और सम्यता के साथ अपना मत प्रकट किया ह । इसमे पहले कई बार शास्त्र का विचार करन का प्रयत्न किया गया और उसका परिणाम छाप कर विद्वाना के विचार के लिये भेज भी लिया गया था । म बहुत समय से इस प्रमत्न में हूँ कि निष्पन्न होकर विद्वान लोग यह निष्पन्न करें कि शास्त्र क्या कहता ह । मुझे एद ह कि अत्र तक ऐसा न हा सका किन्तु मुझ आगा ह कि यह निष्पन्न गीप्र ही हो जाय और विद्वान्मण्डली राग-द्वेष छोड कर जा बतवागी और निष्पन्न करगी उसे सब मा लें । तभी सबका भ्रम भी मिट जायगा । मुझे गांधी जी के सद्देग के विषय में कहने से पूब जो कुछ याद आया वही म कहना चाहता हूँ । अस्पश्यता और मन्दिर प्रवण बिल क सम्बन्ध म मेरा अपने भाई (गांधी जी) से कुछ मतभेद ह । म उनकी बहुत-सी बातें मान लेता हूँ और व भी मेरी बातें मानत और मुझे आगा ह कि म धार धीर उहें मना भी लूंगा । मरी राय म ऐसा बिल अमम्बन्धा-द्वारा नहा पास होना चाहिए । गांधी जी की राय ह कि वह बिल हिन्दुआ की बहु सहाय का राय से पास हो, दूसरी जाति के लोगो की राय से न बने । इस बार में म बल अपने भाई (गांधी जी) से विचार करूंगा ।

मन्दिर के विषय में ता आप जागत हो कि हमारे यहाँ कोई विष्णु का मन्दिर ह कोई शिव का जोर कोई वाली का । फिर किसने मत से मन्दिर प्रवेश का निष्पन्न हो । इसके लिये तो शास्त्र के अनुसार ही निष्पन्न होना चाहिए । गांधी जी की भी राय ह कि कोई ऐसा काम न हा जिससे सना तनिया को चोट पहुँचे । जब से उहाने यह प्रयत्न प्रारम्भ किया ह तब स लागा के विचारो में बहुत परिवर्तन हुआ ह और अस्पश्यता भी बहुत मिटी ह । मतभेद ता भाई भाई में होता ह । मरा और इला (गांधीजी) का सम्बन्ध बना घना ह । मतभेद प्रकाशन से परस्पर बर गही होता । अपना-अपना मत रचना ता स्वभाव ह । जो याय की बात हो, धर्म की बात हो और देग-जाति व मन्त्र के लिये हो, वही सबका करनी चाहिए । आप लोग स्मरण रखिए कि महात्मा गांधी का हृदय सनातन धर्म के भीतर बँटा ह और व इमे बहुत चाहत हैं । अछूत लोगो की हिन्दू जाति से बाहर निकालने का ईसाइयों ने प्रयत्न किया मुसलमाना ने प्रयत्न किया और कितने ही अछूत भाइया की मुसलमान और ईसाइ बना भा लिया । जो गो के रसक से गो को माता मानते थे, मुँह से राम राम जपते थे, चुनिया रगने से वे आज ईसाई और मुसलमान हो गए । व अब धर्म रसक न रह गए । इसी बात

पर महात्मा गांधी ने यह आवाज उठाई। चुटिया जिनके सिर पर, मुँह में जिनके राम राम, घर पर जिनके सत्यनारायण की कथा होती हो ऐसे सनातन धर्म के माननेवाले चमार भगो लोगों को ईसाइयों ने और मुसलमानों ने अपने दल में मिलाने का प्रयत्न किया किन्तु इन्होंने अनेका कष्ट सहकर भी गङ्गा और गऊ की, राम और कृष्ण को न छोड़ा। मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। उन्हीं को लाभ पहुँचाने के लिये ही गांधी जाने सिर उठाया। मैं सनातन धर्म के नाते चाहता हूँ कि जो लाभ मुसलमान और ईसाइयों को मिलता हो वही लाभ डोम और भङ्गी को भी मिले। हमारे सनातन धर्म की महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी भी जाति में रहे किन्तु यदि धर्म से चले तो उसका उद्धार हो जाता है। मैं धर्म ग्रन्थों के अध्ययन के अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देव-दशन का लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गांधी की भी होगी। स्व-दपुराण में भी इसका प्रमाण है कि यदि चण्डाल सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वश्य के समान आदर पाने के योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता हो तो फिर हम अपने अछूत भाइयों को सदाचारी क्यों न बनावें। हम उन्हें सदाचारा बना कर दिवा दें कि जो भाई छोटे-से छोटा हो उससे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।

एक ब्राह्मण को अपने नाम का बड़ा अभिमान था। जब वह एक स्त्री के पास गया तो उसने बतलाया कि मिथिला में धर्म-व्याध के पास जाकर शिक्षा लो। मिथिला जाने पर उसने देखा कि धर्म-व्याध दुकान पर बैठा माम बेच रहा है। किन्तु उसके सम्कार बड़े अच्छे थे, उसको धर्म का पान था। ब्राह्मण ने उससे धर्म का उपदेश सुना। इस कथा का अर्थ यह है कि चाण्डाल जाति में होने पर भी उसके पूर्व जन्म के सत्कार इतने उत्तम थे कि ब्राह्मण ने उससे धर्म सुना। जहाँ नीम का जङ्गल हाता है वहाँ के मय पेड़ कड़वे हो जाते हैं, किन्तु जहाँ चन्दन होता है वहाँ सब वृक्षा में सुगन्ध आ जाता है सत्गुण और सत्कर्म की यही महिमा है।

सदाचार ऐसी वस्तु है कि इसमें नीच कुल में उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकार का उपदेश महात्मा गांधी आपको दते हैं। वे चाहते हैं कि इन लोगों को तकलीफ न हो यदि कुएँ पर एक हमारा अछूत भाई रामदास जाय, जिसके सिर पर चुटिया है, जो एकान्शी व्रत रखता है, सत्यनारायण की कथा सुनता है, गंगा स्नान करता है यदि वह प्यामा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्व पितर सब प्यामा रह गए। चाण्डाल भी हमारे अंग हैं। हमारा धर्म है कि स्मृति में जो उनके लिये धर्म का भाग दिखाया गया है उसका उपदेश दें। क्या आप लोगों में से कोई चाहते हैं कि उन्हें पीने की पानी न मिले ? (श्रोता—नहीं)। क्या आप चाहते हैं कि जिन गडका पर सब लोग चलने हैं उन पर उन्हें चलने की न मिले ? (कभी नहीं) , क्या आप चाहते हैं कि जिन स्कूलों में ईसाई मुसलमानों के लड़के पढ़ते हैं उनमें वे न पढ़ने दिए जाय ? (कभी नहीं)। हाँ यह ही सक्ता है कि जिन पाठशालाओं और विद्यालयों में केवल द्वि-जातियाँ के पढ़ने की व्यवस्था हो वहाँ वे न पढ़ें किन्तु सर्व-साधारण स्कूलों में तो उनको पढ़ने ही देना चाहिए। मरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहों में जहाँ राक हो वह धीरे धीरे मिटे।

आज पार पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहलाते हैं। इनमें अछूत वे ही हैं जो भले काम करने वाले हैं। वे मानव-जाति की वह सेवा करते हैं जो कोई दूसरा कर नहीं सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें तो हमारी क्या दशा होगी, विचार कर लो। भगवान ने कहा है—

“स्वे-स्वे कमण्यभिरत समिद्धि लभते नर ” [अपन अपने काम म लगे हुए लोग मेरा पत् पा सकते ह ।] ये भगो-चमार भाई सब अपना काम करें । फिर स्नान करके यदि मुख्य नारायण का अघ्य दें, मात्र जपें तो बोलो इनका मंगल होगा कि नहा ? (अवश्य-अवश्य) देह धावर यदि हमारा भाई चाण्डाल और हमारी बहन चाण्डालिनी यदि मात्र जप, राम का नाम ले, क्या मुन, व्रत करें, तो धम की उन्नति हुई कि नहीं ? (हुई)

म गांधी जी की कई बातें नहीं मानता हूँ । किन्तु मुझे विश्वास है कि इनके मतभद को म मिटा दूंगा ।

म चाहता हूँ कि इन गरीब बहिना को ऐसा अवसर प्राप्त हो कि साठ चार वजे घर से निकल कर मल साफ करके नहाए और अच्छे कपड पहन कर राम नाम जपें, बताया तब उन्नति होगी कि नहीं ? (होगी) जब स मौण्डेयू चेम्सफड स्कीम आई तब से ईसाई कहते हैं कि इन अछूता म से आधे हमें दो । मुसलमाना न अलग हाव पर फलाए लालच दिए किन्तु धम ह य भाई कि सब तनलाफ उठा कर भी ये हिन्दू धम में ही बन रहे । म इनके जाग अपना माथा टकता हूँ ।

नृसिंह-पुराण म लिखा ह—कि ब्राह्मण, दाय्रिय वश्य, गूद्र तथा अत्यज—सबको भगवान क दान का अधिकार ह जहाँ मन्दिर के अधिकारी प्रसन्नता से जान का अवसर दें वहाँ गभ-द्वार के बाहर से ही उन्हें दान करा दिया जाय । जहा न आज्ञा दें वहा न जायें । मेरा विचार ह कि हर एक वस्तो म ऐस मन्दिर बनवा दिये जाय जिनमें सब जातियाँ जा सकें और भजन-कीर्तन क्या-उपन्येग मुन सके ।

हम इन अछूता का जल देना ह, रहने को स्थान देना ह और इन्ह शिष्या देनी ह । म तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड घरा म मूर्तिया रखी हा और भगवान का भजन हो, तभी तो वास्तव म मङ्गल होगा । महात्माजी न जा बारह महीने स काय्य उठाया था वह परसा तक इस विश्वनाथ जा की नगरी म समाप्त हा जायगा । भगवान् इहें दाषायु करें और सदा मङ्गल करें जिससे य सबका दु ख दूर कर सकें । आप की तपस्या और परिधम के लिय धयवात् ह । भगवान विश्वनाथ आपको दीघजीवी करें ।

यद्यपि गांधीजी अपने मत से विचलित नहीं किए जा सके तथापि मालवीयजी ने मात्र-दीक्षा के द्वारा अछूता के उद्धार का जो काय प्रारंभ किया था वह निरन्तर हाता रहा मालवीयजी के अतिरिक्त अय अनेक बने-बड विद्वाना ने भी मात्र-दीक्षा देनी प्रारंभ की, जिनम महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तवभूषण और पण्डित मन्नारायण उपाध्यायजी का नाम उल्लेखनीय ह । सन् १९३६ ई० में मात्र-दीक्षा समारंभ के प्रसंग गिबरात्रि-यव पर कागो म हाथिया पर व भगवान और छहा दाना के स्वरूप छ विद्वाना का शोभा-यात्रा निकली । बड बड प्रकाड पण्डित साथ म गिव महिम्न-स्तोत्र का पाठ करते चल रहे थे । उनके पाछ अपार जनसख्या, हरिजन के असाडे गाने बजाने वाला की गाथिया—एक अपूव अवर्णनीय समारोह था—शाश्वमघ घाट पर सभा हुई । अस्वस्थ हाने पर भा मालवायजी वहाँ आए और उहान उपदेश निया और अगले दिन यथाविधि उन्हाने मात्र-दीक्षा भी ले ।

इस मात्र-दीक्षा का सबसे बधा प्रभाव ता यह हुआ कि कागो क सार हरिजन यह समझने लगे कि हम हिन्दू हैं, हमें भी रामनाम जपन का अधिकार ह और हमारा भी हिन्दू समाज में स्थान ह ।

हरिजना के उद्धार के लिये मालवीयजी ने इतना ही नहीं किया बरन् कई बार हरिजना के मुहर्ले देखने के लिए गए, उन्हें स्वच्छता का उपदेश दिया और उनके मकान बनाने के लिये उद्योग किया ।

मालवीयजी के इस काम ने काशी के कुछ पण्डितों को इतना रुष्ट कर दिया कि उनमें से बहुत से लोग तो मालवीयजी को गालियाँ देने लगे । पर सच्चे हृदय से पूछा जाय कि क्या वे लोग मालवीयजी के विशाल हृदय को तनिक भी पहचान पाए ? यह डके की चोट कहा जा सकता है कि जैसा सादा और परम पवित्र जीवन मालवीयजी का था उतना पवित्र जीवन स्यात ही विश्व के किसी कोने में मिल सके । जो विद्वान उनका विरोध भी करते थे व भी यदि निष्पक्ष तथा सूक्ष्म दृष्टि से एकांत में बैठ कर इस पर विचारेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि मर्यादापुराणोत्तम राम ने जब निपाद को गले से लगाया उस समय राम, राम ही बने रहे, पर निपाद अपनी स्थिति से ऊँचे उठ गया । पारस नभी छाटा नहीं बनता ह, वह लोहे को सोना बना देता ह । हमारे विद्वान पण्डितगण यह बात जानते ह कि गङ्गाजी की पवित्र धारा में सारा ससार आकर डुबकी लगा लेता है और सारा मल भी उसमें डाल देता है, पर गङ्गाजी वही जगत्रयपावनी बनी रहती है और भगवान् विश्वनाथजी नित्य उन्ही के जल से स्नान करने को उत्सुक रहते हैं ।

गूँगी माता : गौ

जब हम कमी पीडा होने लगती ह तो हम छटपटाते ह, रोते और चिल्लाते ह और बता देते ह कि पीडा वहाँ हुई ह। पर यदि वही पीडा किसी गूँगे की हो, जिसके बाणो न हो, तब वह अपना पीडा कैसे बतावे ? ऐसे कितने लोग हैं जो आँसु के धाँसू देखकर किसी की "यया पहचान लेते हैं।

सुनते ह हमारे देश में दूध दही घी की नदियाँ बहती थीं। लोग बड़े अभिमान में चिल्ला चिल्ला कर समाओ में यह बात निरंतर कहा करते ह। यह बात वसी हो अटपटी ह जैसे निल्ली के कुछ ताँगाँवाले सम्राट अकबर के खानाना से अपना सम्बन्ध जोड़ कर मन में मगन हुआ करते हैं। पर उनके सामने दिल्ली का लाल किला, फतेहपुर सीकरी के भवन और आगरे का ताज उनके पुराने वैभव की उँहें याद तो दिलाने ह। यहाँ तो दूर तक चले जाइए, खेतों में मरभुखे बग और गोधनो में सूखी हुई गीए मिलेंगी जिनका एक एक हाड गिन लीजिए और ऐसी भी इतनी कम हैं कि उन्हें उँगली पर गिना जा सकता ह।

जब से अंगरेज हिन्दुस्थान में आए तब से हिन्दुस्थानिया को भी गर्मी अधिक लगने लगी। उन पहाडो प्रा तो में जहाँ सतार की मोह माया त्याग कर लोग अपना एकांत जीवन बिताने जाया करते थे, उन्ही हिमालय की पवन पवत मालाया में मोह माया को साथ लपेटे लेकर लोग पहुँच गये हैं। पवत की पवित्रता और एकांतता तो मिट ही गयी, साथ ही उसका स्वरूप भी बन्ल दिया। जहाँ लोग ब्रह्म से मिलने का प्रयास करने जाया करते थे। वहाँ लोग सरकारी अधिकारिया, नेताओ, मंत्रियो और प्रेमिकाया से मिलने जाने लगे। विलास ने वहाँ डरा आ जमाया। योगियों का स्थान भोगियों ने छीन लिया। आप पहाडियों की रानी मसूरी पर चले जाइए। देहरादून व गंधी मैदान से यह पहाडो सामने दिखाई पडतो ह जहाँ नित्य स या को बिजली के दीपों की मनोहर दीवाली निरंतर मनाई जाती रहती ह। गर्मी के दिनो में, वहाँ नदनवन ऊपर स्वग से उतर आता ह और नीचे के देवता लोग ऊपर उस न दनवन में विहार करने के लिए षड जाते ह। यहाँ नियमित रूप से तीसरे चौथे दिन गाया वा एक क्षुण्ड आया करता था, जिनके पीछे पीछे लाठी लिए हुए कसाई बडो निदयता से उन्हें हारते ले चलने थे। वे गीए कितनी सुदर, स्वस्थ और बलिष्ठ होनी थी कि बस देखते ही बन पडता था। जान पडता था कि इन्ही गोआ को देखकर रसखान न कहा था— ब्राठहूँ सिद्धि नवी निधि को सुख नद की गाय धराय बिसारी पर ये सु दर गाएँ धमसान में ले जाई जाती थीं। जहाँ कई-कई गाँव एक साथ छूरे के नीचे पहुँचा दी जाती थीं। कुछ गाँव हठ करतो थी धागे नहीं बढती थीं उनको पूँछ ऐसी बुरी तरह मरोड़ी जाती थी कि वह टूट जाती थी। बेचारी पीडा से उछलकर आगे बढती थी और फिर समाप्त। हिन्दुआ की ये माताएँ उसो पवित्र हिमालय की गोए में, जहाँ से गया निकलती ह और उन्हीं हिन्दुओं के सामने, जो उन्हें माता कहते ह, राशसो का भोजन हो जातो थीं। जहाँ एक ओर आँसु में आँसू भरकर पन्वीस करोड पुत्रों के होते हुए भी वह माता विषग होकर प्राण देतो थी वहीं दूसरी ओर हम लोग सिनेमा देखते थे दूर देशों के समाचार पडते थे और अपनी गर्मी शान्त करने के लिए वहाँ निवास करते थे। उस हल्ले में हम अपनी

गौरी माँ का विलाप नहीं सुन पड़ता था, हम नहीं ममझ पाते थे कि हमारे बच्चों के मुँह से बलपूर्वक दूध छीना जा रहा है। यद्यपि आजकल यह दुष्काण्ड कम हो गया है किन्तु भारत के अनेक प्रदेशों में अब भी इसकी आवृत्ति होती जा रही है। पर हम लोग चुप बैठे हैं, साम्यवाद और समाजवाद का ढकीसला करते हैं और हमारी अधिक समस्या का जो इतना महत्त्वपूर्ण पहलू है उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

बी टल्प के अथवास्त्र को पढ़ने से जान पड़ेगा कि उस समय दुषारू पशुओं की रक्षा के लिए राज्य की ओर से कसे कसे उपाय किए जाते थे। जो खाले गर्भों के दिना में बछड़ों के लिए पर्याप्त दूध नहीं छोड़ते थे उनके अँगूठे काट लिए जाते थे। किसी बछड़े, सड़ि या गौ को मारने की आज्ञा नहीं थी। यह प्रथा वर्तमान काल तक भी हिन्दू राज्यों में बनी बली आई और गौ केवल हिन्दुओं की माता नहीं, बरन् लोगों की माता कहलाई जाने लगी—

‘गावस्त्रैलोनयमातर’

हिन्दुओं की बात तो जाने दीजिए, मुसलमानी शासनकाल में गोरक्षा पर बड़ा ध्यान रखा गया। बाबर ने अपने मरने के समय अपने पुत्र हुमायूँ को उपदेश देते हुए यह भी कहा था कि यदि तुम भारत के लोगों के हृदय पर शासन करना चाहते हो तो गौ को हत्या न होने देना।

मुस्लिम राज्य की स्थापना से लेकर फीरोजशाह तुगलक के समय तक गौ की बिक्री पर जज्जो नाम का एक कर लगाया जाता था जिसका उद्देश्य यही था कि गौ की रक्षा हो सके। अकबर और जहाँगीर दोनों ने गौ की रक्षा का प्रयत्न किया। ‘इस्लामी गोरक्षण-सभा’ के अनुसार बाद के मुगल बादशाहों में मुहम्मद शाह और शाह आलम ने भी गौ बच की मनाही कर दी थी।

मुगलों के अन्तिम दिनों में प्रातः स्मरणीय छत्रपति शिवाजी ने तो केवल गौ और ग्राहण की रक्षा के लिए ही तलवार सँभाली थी। जब वे बारह वर्ष के थे तब एक दिन उन्हें बलपूर्वक बीजापुर के सुल्तान के दरबार में जाने के लिए कहा गया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया, “हम हिन्दू हैं, वे यवन हैं। वे बड़े नीच हैं क्योंकि वे गौ को हत्या करते हैं। सरेशाम गौएँ मारी जाती हैं। मेरा बस बले तो मैं ही हत्यारा की गदन मार दूँ।”

वर्तमान समय में नेपाल राज्य ने गोरक्षा के सम्बन्ध में प्रशासनीय कार्य किया है। स्वतंत्रता प्राप्त करने से पूरुष जोधपुर राज्य तो इससे भी आगे बढ़ा हुआ था। यहाँ से गौ, भेड़ और बकरी सरू का बाहुर भोजना मना था। सन् १९२६ ई० में बेलारी जिले के अन्तर्गत सोण्डर राज्य के शासक ने गौ बच रोकने की तो घोषणा कर ही दी थी साथ ही बूढ़ी और सूखी गौओं को भी बसाइया के हाथ से ले लेने का प्रबंध राज्य की ओर से किया था।

यह जान कर किसे आश्चर्य और हर्ष न होगा कि इस युग में सबसे पहले गोरक्षा का काम सीतापुर के प्रसिद्ध मुसलमान वकील थी सैयद नाजिर अहमद साहब ने प्रारम्भ किया था और उन्होंने सीतापुर में ही ‘इस्लामी गोरक्षण सभा’ स्थापित की। वे गौ के और गोपाल कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उन्होंने सदा यह प्रचार किया कि इस्लाम धर्म ने कहीं भी गोबध की आज्ञा नहीं दी है। उन्होंने गोरक्षा के लिए बहुत से पत्रों और पुस्तकें बाँटीं। भारत-से-बाबू हरिद्वन्द्व के दण्डों में उनके लिए कहा जा सकता है—

‘इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए।’

सन् १८७७ ई० में मद्रास में 'सोसाइटी फोर दि प्रिवेन्शन ऑफ क्रुएल्टी टु ऐनिमल्स' (जोवों को निर्दयता से बचानेवाली समिति) नामक संस्था प्रारम्भ हुई। यह तब से काम करती आ रही है। इसके इन्स्पेक्टरों को पुलिस के सिपाहियों के अधिकांश मिले हुए हैं कि वे जितो भी जीव हिंसक को तरकाश बंदी कर सकते हैं।

कलकत्ते का 'काउंट प्रिजर्वेशन लीग' (गोरक्षा-संघ) सन् १९०८ ई० में स्थापित हुआ और इसके अध्यक्ष हुए आंग्लो-भारतीय मुकर्जी। फिर तो भारत भर में न जाने कितनी 'रिजर्वेशनल', गोशालाएँ और गोरक्षक मण्डलियाँ बनीं।

मालवीयजी महाराज का गोरक्षा-आन्दोलन से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के जन्म के पश्चात् ही उत्तरी के साथ प्रति वर्ष गोरक्षा सम्मेलन भी होने लगा और मालवीय जी उसमें नियमित रूप से भाग लेने लगे। द्धर हरिद्वार के पास गोवर्णमन्त्रिय धम सभा, कनखल ने और फिर भारत धर्म महामण्डल तथा सनातन धम सभाओं ने गोरक्षा के लिए आन्दोलन किया जिनमें से अनेक का नेतृत्व मालवीय जी ने किया और अनेक गोरक्षा सम्मेलनों के वे सभापति रह चुके हैं। मालवीय जी ने केवल प्रचार मात्र ही नहीं किया बल्कि स्थान-स्थान पर गोशालाएँ और पिंजराघरों के लिए रचना भी इकट्ठा किया। राजाशा, महाराजाओं जमींदारों और ताल्लुकेदारों से मिलकर उन्होंने गोचर भूमि के लिए स्थान छुड़वाए। मथुरा के श्री हासानन्द का नाम गोरक्षा के इतिहास में अमर रहेगा। वे सत्ता बरना मुँह फाला किए रहते थे। उनका कहना था कि जब तक हम पूणत गोवध बन्द नहीं कर लेते तब तक हम लोगों को अपना मुँह फाला ही रखना चाहिए। पूज्य मालवीय जी ने हासानन्द की बड़ी सहायता की और मथुरा के हासानन्द गोचर भूमि-ट्रस्ट के स्थापित करने में पूरा सहयोग दिया।

प्रायः राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के साथ-साथ गोरक्षा सम्मेलन भी हुआ करते थे। गाँधी जी को गोरक्षा में बड़ी विशेष रुचि थी। इसीलिए अखिल भारतीय गोरक्षा-समिति साबरमती के अधीन महारत्ना गाँधी की सरसता में एक वैद्रीय गोरक्षा समिति बनी जो अब तक बराबर गोरक्षा का काम करती है।

सन् १९२८ ई० में मालवीय जी की अध्यक्षता में प्रयाग में जो सनातनधम-महासम्मेलन हुआ उसमें गोरक्षा के सम्बन्ध में बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हुए। ये केवल प्रस्ताव मात्र नहीं बल्कि गोरक्षा की पूरी काय प्रणाली ही है—

१—(क) इस महासभा को यह देखकर बहुत सन्तुष्ट होता है कि इस देश में गोवध का बड़ा भयकर सहार हो रहा है। अतएव महासभा हिन्दू भाइयों से मानुरोध प्रायना करती है कि वे गोश्राँ को बधिको के हाथ पडने से बचावें और बध्ना तथा बूनी गोश्राँ को ऐसे स्थाना, जगलो और रियासतों में रखन का प्रबन्ध करें जहाँ कानून से गारहया निषिद्ध हो।

(ख) यह महासभा जमींदारों से निवेदन करती है कि गाँवों में गोचारण के लिए काफी भूमि छोटने का नियम करें और जहाँ गोचारण भूमि की खेती में मिला लिया गया हो उसे छोड दें तथा सरकार अनुरोध करती है कि ऐसी जमीन पर मालगुजारी न ले।

(ग) जहाँ-जहाँ उचित जान पड़े एक-एक आदर्श गोशाला खोली जाय।

(घ) प्रत्येक हिन्दू जिसको सामर्थ्य हो एक गो पाले।

(ड) यह महासभा गोदान करनेवालों को आदेश करती है कि वे योग्य पत्र को ही गोदान दें और गोदान के योग्य ही गौओं का दान करें तथा गोदान लेनेवालों से प्रार्थना करती है कि उन्हें गो के रखने का सामर्थ्य न हो तो उसका दान न ले ।

(च) यह सनातनधर्म-महासभा सब सनातन धर्मानुयायी सज्जना से निवेदन करती है कि बधोत्सव में वे केवल उत्तम जाति के साँड छोड़ें और वहीं छोड़ें जहाँ उनकी आवश्यकता हो । साँड छोड़ने से पहले म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से या रियासतों की सरकार के साथ इस बात का वे पक्का प्रबंध कर लें कि उनके छोड़े हुए साँड का ठीक ठीक पालन पोषण और उनकी रक्षा होगी । बिना ऐसा प्रबंध किए साँड को छोड़ना इस कलियुग में पाप का मूल हो गया है और उनसे प्रत्येक धर्मगोल प्राणी को बचना चाहिए ।

(छ) यह महासभा हिंदू मात्र के प्रति आदेश करती है कि वे कसाइयों के साथ किसी प्रकार के लेन-देन का व्यवहार न करें और जो इससे विरक्त लेन-देन करें या गो को बधिका व हाथ बेचे, उसे उचित सामाजिक दण्ड दें ।

(ज) यह महासभा प्रत्येक हिंदू से अनुरोध करती है कि वह जहाँ तक हो सके चमड़े का व्यवहार बंद करे ।

२—इस महासभा का यह निद्वय है कि गोवध केवल मांस के कारण ही नहीं बरन् चमड़ा, चरबी, हृत्पादि वस्तुओं के कारण भी होता है और वध को हुई गाय का चमड़ा काम में लाने से गो हत्या की उत्तेजना मिलती है । इसलिए यह महासभा हिंदू मात्र से अनुरोध करती है कि वे स्वभाविक मशय से भरे हुए पशुओं के ही चमड़े से बने हुए जूते आदि वस्त्रों में लवें और हिंदू पत्निका से प्रार्थना करती है कि स्वभाविक मीठ से भरे हुए पशुओं के चमड़े के जूते आदि बनवा कर सब हिंदुओं के लिए उनका प्राप्ति करना सुलभ कर दें, और हिंदू मिल वालों से अनुरोध करती है कि वे चमड़े की भाँडे इत्यादि में चरबी के स्थान पर जय निर्दोष वस्तुओं का प्रयोग करें ।

(३) इस महासभा की सम्मति आजकल बड़े शहरों में दूध बेचने वाले लोग गौओं से बहुत बुरा बर्ताव कर रहे हैं, जिससे वह पूर्ण युवावस्था में ही प्रायः बध्पा होकर मार डाली जाती है और उनके बच्चों को भी मार डालते हैं । इसलिए यह महासभा सब गोशालाओं तथा पिंजरापोला के ध्येय स्थापकों से अनुरोध करती है कि वे उनको दुग्धालय के रूप में परिणत कर दें । बूढ़, अक्षत और दूध न देने वाली गौओं को, जहाँ उनके पालन का ध्येय कम है, ऐसे स्थान पर भेज दें और अपने साँडों के साथ गौओं की नसल इस प्रकार सुधार दें और दूध बढ़ा दें कि किसी के लिए भी उनका वध करना आर्थिक दृष्टि से असम्भव हो जाय ।

(४) सनातनधर्म महासभा को यह देख कर अत्यंत दुःख होता है कि बड़े बड़े नगरों में दूध देने वाली गौएँ ले जाई जाकर दूध बंद होना पर कसाइयों के हाथ बेच दी जाती है और उनसे बच्चे नहीं लिए जाते । इस भयंकर पाप और हानि को रोकने के लिए सन् १९१३ ई० में जो बोर्ड ऑफ एडिटर ने कोयम्बटूर में बान्नु की आवश्यकता बतलाई थी, उसकी आर महासभा सरकार और कौन्सिलों के मेम्बरों का ध्यान दिलाती है ।

पढ़ता ह। यह काम बस्या का था—'कृषि गोरक्ष वाणिज्य बस्य धम स्वभाजम् ।' [कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य ये बस्यो का स्वामाविक धम ह।]

हिन्दू विश्वविद्यालय से बाह्यम चा सरलर पद त्याग देने के पश्चात् वे गोरेखा में ही लग गए थे। और शिवपुर (काशी) में ही उन्होंने व्यवनाथ्रम की प्रसिद्ध गोपाला स्थापित की और अतः तब उसके गोपाष्टमी के उत्सव में सम्मिलित होते रहे। अन्तिम बार सम्बत २००३ की गोपाष्टमी के दिन भी वे व्यवनाथ्रम गए थे। वहाँ उन्होंने भाषण भी किया और मल्लयुद्ध भी बहुत देर तक देखते रहे। अन्त में वहाँ ब्यास जी ने उन्हें अनार का रस पिला दिया। बस वह रस ही विष हो गया, सर्तों बर गया, कफ बढ़ने लगा और उसके प्रभाव से उन्होंने जो क्षम्या पकड़ी फिर उठ ही नहीं पाए।

गोभक्त मालवीय जी स्वयं चमड़े का जूता नहीं पहनते थे। वे सबरों, सहस्त्रों गूंगी माताओं के आशीर्वात् से ही आयु पाते चले जा रहे थे। वही पवित्र दूध मालवीय जी के शरीर में उत्साह बल, जाति और मधा दे रहा था और बेचारी गोए बड़ी आशा से उनकी ओर उस दिन की बाट जोहतो हुई निहारती थीं जब भारत में गोवध बन् हो और वे स्वतन्त्रतापूर्वक फिर पहले के समान विचरें।

सन् १९४१ के नवम्बर में एक बप की मनी जेलयात्रा के अन्त तर पंडित यजनारायण उपाध्याय जी को ज्ञात हुआ कि मालवीय जी महाराज प्रयाग में हैं। वे सोचे उनके पास पहुँचे। मालवीय जी ने कहा कि मेरे हाथ पर काम नहीं कर रहे हैं। दो चार पग चलना भी मेरे लिए असम्भव है। हाल में ही मन गोरक्षा मण्डल की स्थापना की है और उसकी रजिस्ट्री भी करा दो ह। कुछ सज्जनो से सहायता भी मिल चुकी ह। यद्यपि मैं यावत जीवन कुछ न कुछ गोमाना की सेवा करता रहा किन्तु इस समय गोरक्षा के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से कुछ काय करना ह। यदि तुम इस काय में लग जाओगे तो सम्भव ह यह काय व्यवस्थित रूप से चलने लगेगा। कुछ दिन हुए बम्बई से चौंटे जी महाराज काशी में आए थे। उन्होंने मुझे कहा कि आप जीवन भर देश की सेवा नाना प्रकार से करते रहे किन्तु आपने गो माता की व्यवस्थित रूप से कोई सेवा नहीं की। इस समय मैं देख रहा हूँ कि देश में स्नान-स्नान पर लाखो गोओ का सहार युद्ध के कारण हो रहा ह। दूध भी दुलभ ही रहा ह। आपके खड हुए बिना यह काय किसी प्रकार नहीं हो सकता। मने कहा कि चौंटे जी महाराज इस समय मेरे हाथ-पैर काम नहीं देते। यदि दस बप पूव यह काय मुझे सौंपते तो मैं अवश्य कुछ कर सकता लेकिन आप की आज्ञा शिरोधार्य ह।

यही वार्तालाप काशी गोरक्षा मण्डल की स्थापना का मूल ह। काशी लौटने पर मालवीय जी महाराज नियमित रूप से प्रतिदिन गो सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य देशों के साहित्य का अनुगोलन करते थे। पञ्जाब निवासी ब्रह्मदत्त गर्मा यूरान, अमेरिका आदि देशों का गो-सम्बन्धी वर्णन सुनाते थे और हिन्दू विश्वविद्यालय की विद्वन्मण्डली वेद से लेकर अब तक का भारतीय गो-सम्बन्धी साहित्य उनकी सुनाया करती थी।

उनका कहना था कि जब किसी काय में लगना हो तो तत्सम्बन्धी साहित्य का पूर्ण रूप से अनुगोलन करना परम बतत्त है। मण्डल की प्रबन्ध समिति ने इस सत्या का उपमन्त्री उपाध्याय जी को नियुक्त किया और मालवीय महाराज के आदेशानुसार गोरक्षा सम्बन्धी जो काय पाँच बपों में

हुआ उसका सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। मण्डल द्वारा बिहार, युक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) और मध्य प्रांत (मध्य प्रदेश) के प्रायः सभी जिलों में गोरक्षा का प्रचार, गोशालाओं का संगठन और उनको व्यवस्थित रूप से चलाने का प्रबंध किया गया। सभी गोशालाओं को एक सूत्र में बांधने का सघटित उद्योग हुआ।

हमारे भारतवर्ष के सभी स्थानों में कार्तिक पुनला प्रतिपदा से अष्टमो तक गोसप्ताह मनाये जाये का आयोजन किया गया। मालवीय जी महाराज कहा करते थे कि मैंने अपने जीवन में प्रथम मापण मिर्जापुर में १६ वर्ष की अवस्था में गोरक्षा पर किया था। उनको आंतरिक अभिलाषा थी कि गोमाता की सेवा करते हुए जीवन समाप्त हो। उनकी इच्छा पूरी हुई। ज्यवनाश्रम में गोपाष्टमी के उत्सव में उनका अंतिम मापण गो रक्षा पर ही हुआ था।

मुद्रकाल में भारत सरकार के खाद्य सदस्य सर योगेश्वर सिंह सर्दार जो काशी हिन्दू विश्व विद्यालय देखने आए और वे पूज्य मालवीय जी महाराज से मिले। महाराज ने खाद्य सदस्य को बतलाया कि भारत में कई स्थानों पर गमी गमिणी गायें मारी जाती हैं और गर्भ के बच्चे के नम्य चमड़े का सामान बनाया जाता है जो देश विदेश में ऊँचे मूल्य पर बिकता है। इसके कारण महाराज बड़े दुखी रहते थे। अतः मालवीय जी महाराज ने खाद्य सदस्य पर बहुत बल देकर कहा था कि भारतवर्ष में गो-वध बन्द होना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया था कि इसके लिए सघटित और दया व्यापी आन्दोलन होना चाहिए। तत्काल उन्होंने दस वर्ष से कम उम्र के बिल, दूध देने वाली गाय गमिणी गाय और बछड़ों के वध न करने को विशेष आज्ञा निकाल दी। प्रांतीय सरकारों के द्वारा म्युनिसिपल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में कहाँ तक इसका पालन हुआ यह कहना सम्भव नहीं है।

उन्हीं की प्रेरणा का फल है कि खाद्य सदस्य ने गोशालाओं का बड़ा भारी सम्मेलन दिल्ली में कराया जिसका विस्तृत विवरण प्रकाशित हो चुका है। उसी के आधार पर प्रांतीय सरकारों भी अपने अपने प्रांतों की गोशालाओं के सघटन में तत्पर हो गईं।

अब भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया है और आशा की जाती है कि सोशलिस्टीक इस पवित्रभूमि से गोसहारा दूर हो जायगा। समुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने भी असेम्बली के अपने भाषण में कहा था कि आर्थिक दृष्टि से हमारे प्रांत में गोवध नहीं होना चाहिए।

मालवीय जी महाराज ने भारतीय गोरक्षा प्रचारक मण्डल के उद्देश्यों में यह स्पष्टतया घोषित किया कि आर्थिक दृष्टि से गोवध हम देश में बन्द होना ही चाहिए।

गोमूत्र और गोबर की जादू से भूमि उपजाऊ बनती है। इस प्रकार कराछा कृषि की व्यापक प्रतिव्यवस्थाओं को मिलती है जिससे सतत की उपज कई गुनी बढ़ जाती है। भारत वृषि प्रधान देश है जिसमें ७ लाख गाँव हैं और ९० प्रतिशत निवासी कृषक देहातों में रहते हैं जिनका जीवन खेतों पर ही अवलम्बित है। अच्छी खाद न मिलने से पशुओं की उवराशक्ति क्षीण होती जा रही है। हमारे देश में बंला के द्वारा खेती होती है कि तु गोवध के कारण बल कम हो रहे हैं, उनकी सख्या वेग से घट रही है और उनका मूल्य बढ़ता जा रहा है।

मालवीय जी महाराज का कहना था कि खेतों के साध-माय किसानों की गोपालन भी करना चाहिए। गोत्रों से दूध, घी और दही प्राप्त होता है जिससे किसान अपने परिवार को हृष्ट-पुष्ट बनाता

श्रीर बचा हुआ दूध भी बेचकर अपनी आय बढ़ा सकता है। सस्ता श्रीर शुद्ध गोदुग्ध प्रत्येक व्यक्ति का अधिक से अधिक मात्रा में मिलना चाहिए। हमारे देश के मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक ह्रास का मुख्य कारण गोदुग्ध का पर्याप्त मात्रा में न मिलना है। इंग्लैंड, जर्मनी तथा अमेरिका आदि पश्चात्य देशों में प्रति व्यक्ति का औसत सेर सत्रा सेर दूध मिलता है किन्तु हमारे देश में प्रति व्यक्ति एक छटौंठ का औसत नहीं है। इसका मुख्य कारण अंग्रेजों का गोसम्बन्धी घृणित नाति थी। पश्चात्य देशों में मनुष्य की आयु का अनुपात पचास-साठ वर्ष है। किन्तु हमारे देश में इकस बरस वर्ष आयु का अनुपात है। पश्चात्य देशों में एक हजार एक वर्ष की अवस्था में पचास साठ बच्चे एक वर्ष का अवस्था में मरते हैं किन्तु हमारे देश में मृत्युसंख्या दस दस और तीन सौ तक पहुँच जाता है। हमारे देश में जो अनेक प्रकार काग होते हैं उनका मुख्य कारण शुद्ध गोदुग्ध का अभाव ही है। अमेरिका आदि देशों में आठ आठ दस दस माल चौड़ा गोचर भूमि छोड़ी जाती है जहाँ हजारों गौएँ स्वच्छन्दता से चरती हैं और एक मन तक प्रति दिन दूध देती हैं। इसके विपरीत हमारे देश में अंग्रेजों की दुर्नीति और जमादारा का अग्र्य लोलुपता से गाँव की गोचर भूमि नष्टप्राय हो गई है। वह जमीन लेकर जमादारा ने बच दी है। अतः, गोवश क ह्रास का मुख्य कारण गाँव की भूमि का अभाव है। बनारस जैसे घने रसे हुए जिले में भी महाराज ने बहुत द्रव्य करके ३०० बीघा भूमि माल ली थी जिसमें हजारों गौएँ प्रतिदिन चरती हैं और मालवीय जी महाराज का आशीर्वाद देती हैं। उन्होंने मिजापुर, लखामपुर भौंसी आदि जिला में मीना लम्बा-चौड़ी विस्तृत गाँव भूमि छोड़वाने का प्रयत्न किया था और वहाँ के जमादारा ने वचन दिया था कि वे इस कार्य में सहायता करेंगे लेकिन महाराज का मृत्यु के कारण यह कार्य आगे न चला सका। मालवीय जी के जीवन का अन्तिम भाषण च्यवनाश्रम में गत सम्यक् क्रांतिक शुक्ल गोपाष्टमी के दिन हुआ था; उसमें उन्होंने देहाता जनता के सामने कहा था—

दूध पिया कसरत करो नित्य जपा हरि नाम।

हिंमत से कारज करो, पूरेंगे सब काम ॥

यह तो सत्य है कि प्रत्येक भारतीय का अधिक से अधिक गोदुग्ध और घृत का सेवन करना चाहिए और ग्राम-ग्राम में विस्तृत गोचरभूमि भी तैयार करना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि प्रत्येक किसान कम से कम एक गौ रख सके। किन्तु यह सब तक संभव नहीं है जब तक कि हमारी सरकार इस समय के काम चलायनी न करे। आजकल जिस भयंकर महारघता में जनता पसी जा रही है उस देखते हुए यह संभव नहीं जान पड़ रहा है। च्यवनाश्रम में जो मालवीय जी ने विशाल गाँव बसाया था उसमें सैकड़ों गौओं का विधिवत् पालन पोषण होता था। आज मालवीय जी महाराज ससार में नहीं हैं इससे उनका गोरक्ष का काम अधूरा रह गया है। प्रत्येक भारतीय और भारतीय सरकार का कर्तव्य है कि इस देश में गाँव न हों और प्रत्येक भारतीय को गोदुग्ध और गोघृत सरलता से उपलब्ध हो जाय जिससे भारतवर्ष की याद दृढ़ सुगन्ध-समृद्धि और संपत्ति फिर से लौट आवे।

कहा जाता है कि हमारे देश में भी श्रीर दूध की नदियाँ बहती थी। आज वही देश

निर्जीव, निर्मल और अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित हो रहा है। इसका पुनरुत्थान गोमाता के दूध के बिना नहीं हो सकता। किसी विद्वान् ने कहा है—

नो चेद् गत्रा यदि पयो पृथिवीतलेस्मिन् ।
सवर्द्धनं न च भवेत् त्रिधिसततीनाम् ॥
यो जायते त्रिविधशेन तु सोऽपि रूक्षो ।
निर्वीर्यशक्तिरहितः सुकृशः कुरूपः ॥

[यदि इस भूतल पर गाय का दूध न हो तो प्रजा का उचित सवर्धन नहीं हो सकता। यदि संयोगवश बालक उत्पन्न भी हो गए तो वे निर्वीर्य, निशक्त, दुबल और कुरूप होते हैं।]

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

भारत में मुगला के दुर्गों पर विदेशिया की पताका फहराने पर भी मुसलमानी छाप 'हिन्दुस्थान' पर बनी रही। मुसलमानों की जात तो जाने दीजिए, हमारे ब्राह्मण और क्षत्रियों के ब्रह्म का प्रियाम्भ 'अलिफ, बे, प, से होता रहा क्योंकि हमारी बोलचाल की भाषा के लोग भारत' कहकर टुरदुराया करते थे और आन की 'नागरी' उस समय 'बेचारी समझी जाता थी, पारसी उसका गला दबाए बैठी थी। ब्रज का घागरा पहले हुए जब वह कचहरी में घुसने लगी तो मुगला की मुँह चटी पारसी ने उसे वहाँ घुसने न दिया। शहरी लोग गाँव वाला का आदर ही क्या करने लगे। लाय सिर पटकने पर भी बेचारी नागरी की कुछ मुनवादा न हुई। वह उल्टे पैरों लौट आई। पारसी राजा की मुँह चटी थी, किसके दा सिर हुए कि उसके विरुद्ध मुँह खोले।

पर नागरी का यह अपमान कुछ लाग सह न सके। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'बनारसी अक्षर' में बेचारी नागरी की ओर से उड़ी बकालत की। पर राजा साहज ने देखा कि वायु का प्रवाह ठीक नहीं है, वे पाल समेट कर तो नहीं बैठ रहे पर उड़ाने कुछ तो वायु का आश्रय लिया और कुछ पतंग का। देशी घागरे के साथ साथ पारस की चोली अच्छी तो न लगी पर और काइ उपाय न था। उर्दू भाषा मुसलमानी संस्कार लिए हुए भी नागरी वस्त्र पहनकर आई। राजा साहब का हिन्दी ऐसी ही चलती रही।

न गालिस हिन्दी न गालिस उर्दू, जुमान गोया मिली-जुली हो।
अलग रहे दूध से न मिसरी, टली डली दूध में घुली हो॥

यह भी क्या कम था ?

मानवीयजी व जन्म के साथ साथ आगरे से राजा लक्ष्मणसिंह का 'प्रजा हितैषी' भी उदय हुआ और पहले पहल उनके प्रसिद्ध 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी अनुवाद उसमें निकला। लोग ने जी खोलकर इस 'शकुन्तला' का स्वागत किया। इन हिन्दी वस्त्रों में वह सचमुच बहुत भली भी लगती थी। इधर युक्तप्रान्त उत्तर प्रदेश में तो वे लोग हिन्दी और नागरी के राज्याभिषेक की तैयारी कर रहे थे, उधर पञ्जाब में सन् १८८३ और १८८० ई० के बीच बानू नवीनचन्द्र राय ने भा उसकी प्रतिष्ठा की पूरी तैयारी कर ली थी। स्वामी दयानन्दजी के आर्य-समाज ने और पण्डित भद्वाराम फुल्लारी व धार्मिक आन्दोलन ने आर्य भाषा हिन्दी का भी भरकर अपनाया और उसका पटना तक लिये आवश्यक कर दिया। भद्वाराम फुल्लारी जी हिन्दी गद्य के बहुत अच्छे लेखक थे और सन् १८८१ ई० में अपनी मृत्यु के समय उड़ाने कहा भी था कि "भारत में भाषा के लेखक दो हैं—एक काशी में, दूसरा पञ्जाब में—परतु आज एक ही रह जायगा।" यह काशी के लेखक मारने-दु 'बनुआ हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त और फीन हो सकते थे।